वीर-शिरोमणि

महाराणा प्रतापसिंह

(सचित्र)

लेखक

महामहोपाध्याय

रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

मुद्रक

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर

भूमिका

संसार के साहित्य में इतिहास का स्थान बहुत ऊंचा है। किसी जाति को सजीव रखने, अपनी उन्नति करने तथा उसपर दृढ़ रहकर सदा अग्रसर होते रहने के लिये संसार में इतिहास से बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है। वीर पुरुषों के गौरवपूर्ण आदर्श चरित्रों से मनुष्य जाति एवं राष्ट्रों में एक संजीवनी शक्ति का संचार होता है। इसी लिए प्रत्येक देश अपने वीर पूर्वजों के शिक्षाप्रद और उत्साहवर्धक विस्तृत चरित लिखकर उनका सम्मान करता है। राजपूताने में भी ऐसे कई अनुकरणीय, निस्स्वार्थी और आदर्श वीर हुए हैं, जिनमें वीर-शिरोमणि आर्यकुल-कमल-दिवाकर महाराणा प्रतापसिंह सब से अग्रगण्य है। महाराणा प्रतापसिंह का आसन राजपूताने के इतिहास में ही नहीं, किन्तु सम्पूर्ण भारतवर्ष के इतिहास में भी बहुत ऊंचा है। राजपूताने के इतिहास को इतना अधिक उज्ज्वल, आदर्श तथा महत्त्वपूर्ण बनाने का श्रेय उक्त महाराणा को ही है। वह स्वतन्त्रता का पुजारी, अपने कुल-गौरव का रक्षक एवं आत्माभिमान और वीरता का अवतार था।

यह बड़े खेद की बात है कि ऐसे प्रातःस्मरणीय हिन्दूपति महाराणा का ऐतिहासिक दृष्टि से कोई सच्चा जीवनचरित्र अबतक किसी भाषा में प्रकाशित नहीं हुआ। कर्नल टॉड ने यद्यपि बहुत श्रम से राजपूताने का खोजपूर्ण उत्तम इतिहास लिखा है, तथापि उसमें बहुत सी भूलें रह गई हैं, क्योंकि उसने बहुधा चारणों, भाटों आदि के गीतों, ख्यातों और प्रचलित दन्तकथाओं के आधार पर अपने इतिहास की नींव रखी है। उस समय उसको पुरातत्त्व अनुसंधान से कोई विशेष सहायता न मिल सकी। उसके राजपूताने के इतिहास में जैसे अन्यत्र कई भूलें रह गई हैं, वैसे महाराणा प्रतापसिंह के जीवनचरित्र में भी कई बड़ी बड़ी भूलें रह गई हैं और कई आधारशून्य कल्पित बातें भी लिखी गई हैं, जिनका निराकरण करना आवश्यक है। महाराणा प्रतापसिंह को शाही सेना ने इस तरह घेर लिया कि उसे पांच बार बना हुआ भोजन छोड़ना पड़ा और उसके पास द्रव्य न होने के कारण वह मेवाड़ छोड़कर सिंध को चला,

परन्तु मार्ग में मन्त्री भामाशाह के अपनी सारी सम्पत्ति नज़र कर देने पर उसने वह विचार छोड़ दिया तथा बिल्ली के रोटी उठा ले जाने पर अपनी पुत्री के हृदयवेधी चीत्कार से विचलित होकर उसने बादशाह अकबर को अपने कष्ट कम करने को लिखा इत्यादि अनेक बातें खोज से अप्रामाणिक सिद्ध हुई हैं। मैंने युक्ति और प्रमाण के आधार पर उनको शुद्ध करने का प्रयत्न किया है, जिससे बहुत संभव है कि महाराणा के जीवन-सम्बन्धी कुछ असत्य घटनाओं का निराकरण हो जाय और उसका पवित्र जीवन और भी अधिक उज्ज्वल तथा विशिष्ट रूप में लोगों के सामने आ जाय।

राजपूताने का इतिहास, जो संभवतः आठ खण्डों में समाप्त होगा, लिखते समय मुझे कुछ मित्रों ने यह सलाह दी कि महाराणा प्रतापसिंह का वृत्तान्त अलग पुस्तकाकार छपवा दिया जाय, तो वह सर्वसाधारण के लिए भी सुलभ हो जाय और वीर महाराणा के आदर्श चरित्र के पढ़ने के लाभ से पाठक वञ्चित न रह जायँ। तदनुसार उक्त महाराणा का यह जीवनचरित्र अलग पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया है।

राजपूताने के इतिहास में प्रकाशित होने के कारण यद्यपि महाराणा प्रताप-सिंह का जीवनचरित्र बहुत संक्षेप से लिखा गया है, तथापि उसके जीवन-सम्बन्धी प्रायः सभी ऐतिहासिक घटनाओं का अबतक के शोध के अनुसार उल्लेख करने का मैंने प्रयत्न किया है। महाराणा की विस्तृत जीवनी लिखने-वालों को इससे अधिक नहीं, तो कुछ न कुछ सहायता अवश्य मिलेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। मैं इस पुस्तक में कुछ पूर्वापर प्रसंग भी, जिसका देना आवश्यक था, नहीं दे सका, जिसका कारण भी यही है कि राजपूताने के इति-हास में से केवल महाराणा प्रताप का ही भाग लिया गया है। उक्त इतिहास में महाराणा प्रतापसिंह के पिता उदयसिंह और पुत्र अमरसिंह के चरित्र स्वतन्त्र रूप से लिखे गये हैं। भारतवर्ष की वर्तमान शोचनीय दशा में वीरवर प्रताप-सिंह का चरित्र लाभदायक होगा।

अजमेर,
श्रावणी पूर्णिमा
१६८५

गौरीशंकर हीराचन्द ओझा.

विषयसूची

विषय	पृष्ठांक

चित्रसूची

सूचना

इस पुस्तक के पृष्ठ ७ पंक्ति १६ में (पृ० ६१६) और (पृष्ठ ६८५), पंक्ति १८ में (पृ० ७३२) तथा पृष्ठ १० की अंतिम पंक्ति में 'देखो पृ० ७२-७३' और पृ० १८ पंक्ति २७ में (पृ० ७२३) छपा है। ये पृष्ठांक मेरे राजपूताने के इतिहास से सम्बन्ध रखते हैं।

---

* यह चित्र उदयपुर राज्य के सुप्रसिद्ध मन्त्री स्वर्गीय राय महता पन्नालाल सी. आई. ई., के यहां के रंगीन चित्र की उदयपुर के चित्रकार पन्नालाल छगनलाल गौड़ की तैयार की हुई नक़ल के आधार पर प्रकाशित किया गया है।

वीर-शिरोमणि
महाराणा प्रतापसिंह

वीरशिरोमणि प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रतापसिंह का, जो भारत भर में राणा प्रताप के नाम से सुप्रसिद्ध है, जन्म वि० सं० १५९७ ज्येष्ठ सुदि ३ (ई० स० १५४० ता० ९ मई) रविवार को सूर्योदय से ४७ घड़ी १३ पल गये हुआ था[1]।

प्रतापसिंह का राज्य पाना

अपनी राणी भटियाणी पर विशेष प्रेम होने के कारण महाराणा उदयसिंह ने उसके पुत्र जगमाल को अपना युवराज बनाया था। सब सरदार उदयसिंह की दाहक्रिया में गये, जहां ग्वालियर के राजा रामसिंह ने जगमाल को न पाकर कुंवर सगर से पूछा कि वह कहां है? सगर ने उत्तर दिया, 'क्या आप नहीं जानते कि स्वर्गीय महाराणा उसको अपना उत्तराधिकारी[2] बना गये हैं'? इसपर अखैराज सोनगरे ने रावत कृष्णदास (सलूंबरवालों का पूर्वज) और रावत सांगा (देवगढ़वालों का मूल पुरुष) से कहा—'आप चूंडा के वंशधर हैं, अतएव यह काम आपकी

(१) हमारे पासवाले ज्योतिषी चंडू के यहां के जन्मपत्रियों के संग्रह में महाराणा प्रताप की जन्मपत्री विद्यमान है। उसी के आधार पर उक्त तिथि दी गई है। वीरविनोद में वि० सं० १५९६ ज्येष्ठ सुदि १३ दिया है, जो राजकीय (श्रावणादि) होने से चैत्रादि संवत् १५९७ होना चाहिये; परन्तु तिथि त्रयोदशी नहीं, किन्तु तृतीया थी, क्योंकि उसी दिन रविवार था, त्रयोदशी को नहीं। उक्त तिथि को शुद्ध मानने का दूसरा कारण यह भी है कि उस दिन आर्द्रा नक्षत्र था, न कि त्रयोदशी को। जन्मकुंडली में चन्द्रमा मिथुन राशि पर है, जिससे आर्द्रा नक्षत्र में उसका जन्म होना निश्चित है।

(२) मेवाड़ में यह रीति है कि राजा का उत्तराधिकारी उसकी दाहक्रिया में नहीं जाता।

ही सम्मति से होना चाहिये था[१]। बादशाह अकबर जैसा प्रबल शत्रु सिर पर है, चित्तोड़ हाथ से निकल गया है, मेवाड़ उजड़ रहा है, ऐसी दशा में यदि यह घर का बखेड़ा बढ़ गया तो राज्य नष्ट होने में क्या सन्देह है'। इसके उत्तर में रावत कृष्णदास और सांगा ने कहा कि ज्येष्ठ कुंवर प्रतापसिंह ही, जो सब प्रकार से योग्य है, महाराणा होगा। इस विचार के अनन्तर महाराणा की उत्तर-क्रिया से लौटकर सब सरदारों ने उसी दिन प्रतापसिंह को राज्यसिंहासन पर बिठा दिया और जगमाल से कहा कि आपकी बैठक गद्दी के सामने है। इसपर अप्रसन्न होकर जगमाल वहां से उठकर चला गया और सब सरदारों ने प्रतापसिंह को नज़राना किया। फिर महाराणा प्रताप गोगूंदे से कुंभलगढ़ गया, जहां उसके राज्याभिषेक का उत्सव हुआ।

जगमाल का अकबर के पास पहुंचना

गोगूंदे से सपरिवार चलकर जगमाल ज़हाज़पुर गया तो अजमेर के सूबेदार ने उसको वहां रहने की आज्ञा दी। वहां से वह अकबर के पास पहुंचा और अपना सारा हाल कहने पर बादशाह ने जहाज़पुर का परगना उसको दे दिया।

इन दिनों सिरोही के स्वामी देवड़ा सुरताण और उसके कुटुंबी देवड़ा बीजा में परस्पर अनबन हो रही थी। ऐसे में बीकानेर का महाराजा रायसिंह सोरठ जाता हुआ सिरोही राज्य में पहुंचा। सुरताण और देवड़ा बीजा, दोनों रायसिंह से मिले और उसे अपनी अपनी सहायता करने के लिए कहा। महाराजा ने सुरताण से कहा कि यदि आप अपना आधा राज्य बादशाह अकबर को दे दें, तो मैं बीजा देवड़ा को यहां से निकाल दूं। सुरताण ने यह बात स्वीकार कर ली और बादशाह ने सिरोही का आधा राज्य जगमाल को दे दिया। इस प्रकार एक म्यान में दो तलवारों की तरह सिरोही में दो राजा राज्य करने लगे। फिर उनमें परस्पर विरोध उत्पन्न हो गया; जिससे जगमाल बादशाह के पास पहुंचा

---

(१) जब से चूंडा ने अपना राज्याधिकार छोड़ा तभी से "पृष्ठ" (राज्य) के स्वामी महाराणा और "ठाट" (राज्यप्रबन्ध) के अधिकारी चूंडा तथा उसके मुख्य वंशधर माने जाते थे। राज्यप्रबन्ध आदि का काम उन्हीं की सम्मति से होता चला आता था। इसी से अखैराज सोनगरे ने चूंडा के वंशजों से यह बात कही थी।

और उसने सहायता की प्रार्थना की। बादशाह ने उसकी सहायता के लिये रायसिंह चंद्रसेनोत[1] और दांतीवाड़ा के मालिक कोलीसिंह की अध्यक्षता में सिरोही पर सेना भेजी। शाही फ़ौज के साथ जगमाल के आने की ख़बर पाकर सुरताण यह सोचकर कि आबू में रहकर लड़ना अधिक सुविधाजनक होगा, सिरोही छोड़कर आबू चला गया। जगमाल ने सिरोही पर अधिकार कर सुरताण से आबू छीनने के लिये सेना के साथ कूच किया। सुरताण ने भी सेना तैयार कर जगमाल की सेना से दो कोस दूर एक उपयुक्त स्थान में डेरा डाला। उसके साथ लड़ने में हार जाने की संभावना देखकर जगमाल ने यह सोचा कि यदि पहिले सरदारों के ठिकानों पर हमला किया जाय, तो वे सब सुरताण को छोड़कर अपने अपने ठिकानों में चले जावेंगे और उस समय उस पर आक्रमण करने से हमारी जीत निश्चय ही होगी। इस विचार के अनुसार देवड़ा बीजा हरराजोत, राठोड़ खींवा मांडणोत आदि को कई मुसलमान सिपाहियों सहित भीतरट परगने की ओर भेजना निश्चय हुआ। इसपर देवड़ा बीजा[2] ने जगमाल तथा राठोड़ रायसिंह से कहा कि सुरताण बड़ा वीर है, उसकी युद्ध-कुशलता मैं जानता हूं, आप मुझे अलग करना चाहते हैं तो मैं भीतरट पर जाने को तैयार हूं, परंतु जिस समय सुरताण आपपर हमला करे, तब सावधान रहना। इसपर राठोड़ों ने उसे ताने के तौर पर कहा कि जहां मुर्गा नहीं होता वहां तो सदा रात ही रहती होगी। यह सुनकर बीजा अत्यन्त लज्जित हो गया और भीतरट की ओर चला गया।

इधर सुरताण ने यह देखकर कि बीजा जगमाल से अलग हो गया है, देवड़ा समरा[3] को दताणी गाँव में जाकर जगमाल और रायसिंह पर हमला करने की सलाह दी। सुरताण ने वि० सं० १६४० कार्तिक सुदि ११ (ई० स० १५८३ ता० १७ अक्टूबर) को जगमाल पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में जगमाल, राठोड़ रायसिंह तथा कोलीसिंह (दांतीवाड़ावाला) तीनों मारे गये

---

(१) जोधपुर के राव चंद्रसेन का तीसरा पुत्र।

(२) देवड़ा बीजा सिरोही के राव रणमल के दूसरे पुत्र गजा का आठवां वंशधर था।

(३) देवड़ा समरा देवड़ा बीजा का चाचा था।

और सुरताण की विजय हुई। इसप्रकार जगमाल का अन्त हुआ[१]। उसका विशेष वृत्तान्त हम सिरोही के इतिहास में लिखेंगे।

कुंवर मानसिंह से महाराणा का वैमनस्य

बादशाह अकबर ने गुजरात को विजय कर लिया था, परन्तु थोड़े ही समय पीछे वहां मिर्ज़ा मुहम्मद हुसेन और सरदार इख़्तियार-उलमुल्क की अध्यक्षता में विद्रोह हो गया, जिसकी सूचना पाकर बादशाह को शीघ्र ही उधर जाना पड़ा। वहां शान्ति स्थापित कर वह तो अपनी राजधानी को लौटा[२] और कुंवर मानसिंह[३] को बहुतसी सेना के साथ डूंगरपुर तथा उदयपुर की तरफ़ यह आज्ञा देकर भेजा[४] कि जो हमारी अधीनता स्वीकार करे, उसका सम्मान करना और जो ऐसा न करे उसे दण्ड देना। शाही फ़ौज ने डूंगरपुर को विजय कर लिया और वहां का रावल आसकरण पहाड़ों में चला गया। फिर वह महाराणा को समझाकर बादशाही सेवा स्वीकार कराने के विचार से वि० सं० १६३० आषाढ़ (ई० स० १५७३ जून) में उदयपुर आया। महाराणा ने उसका आदर कर उसके साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार किया। कुंवर ने बादशाही सेवा स्वीकार कराने के लिये बहुत कुछ उद्योग किया, जो सब प्रकार से निष्फल ही हुआ। वहां से उसके विदा होने से पहिले महाराणा ने एक दिन उसके लिये उदयसागर की पाल पर दावत का प्रबन्ध किया और कुंवर अमरसिंह तथा मानसिंह को साथ लेकर वह वहां पहुंचा। भोजन के समय महाराणा स्वयं उपस्थित न हुआ और कुंवर अमरसिंह को आज्ञा दी कि तुम मानसिंह को भोजन करा देना। भोजन के समय मानसिंह ने महाराणा के भोजन में सम्मिलित होने का आग्रह किया तो अमरसिंह ने उत्तर दिया कि महाराणा के पेट में कुछ दर्द है, इसलिये वे उपस्थित न हो सकेंगे, आप भोजन कीजिये। इसपर जोश में आकर मानसिंह ने कहा कि

---

(१) मेरा सिरोही राज्य का इतिहास; पृ० २२८-३१।

(२) स्मिथ; अकबर; पृ० ११७-२०।

(३) मानसिंह आंबेर के राजा भगवानदास के छोटे भाई भगवन्तदास का दूसरा पुत्र था, जिसको राजा भगवानदास ने गोद लिया था।

(४) कर्नल टॉड ने बादशाह का शोलापुर से कुंवर मानसिंह को मेवाड़ की तरफ़ भेजना लिखा है (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३६१), जो ठीक नहीं है।

इस पेट के दर्द की दवा मैं खूब जानता हूं, अबतक तो हमने आपकी भलाई चाही, परन्तु आगे के लिये सावधान रहना। यह सुनकर कुलाभिमानी महाराणा ने कहलाया कि जो आप अपने सैन्य सहित आवेंगे तो मालपुरे में हम आपका स्वागत करेंगे और यदि अपने फूफा (अकबर) के बल पर आवेंगे, तो जहां मौक़ा मिलेगा, वहीं आपका सत्कार करेंगे। यह सुनते ही मानसिंह अप्रसन्न होकर वहां से चला गया। इसप्रकार दोनों के बीच वैमनस्य उत्पन्न हो गया। महाराणा ने मानसिंह को यवनसम्पर्क से दूषित समझकर भोजन तालाब में फिंकवा दिया और वहां की ज़मीन को खुदवाकर उसपर गंगाजल छिड़कवाया।

कुंवर मानसिंह ने बादशाह के पास पहुंचकर अपने अपमान का सारा हाल कहा, जिसपर क्रुद्ध हो उसने महाराणा का गर्वगंजन कर उसे सर्वतोभावेन अपने अधीन करने का विचारकर मानसिंह को ही भेजने का निश्चय किया[1]।

इस घटना का वर्णन संक्षेप से राजप्रशस्ति महाकाव्य[2] और राजपूताने की ख्यातों[3] आदि में भी लिखा मिलता है, परन्तु अबुलफ़ज़ल ने, जो मुसलमान इतिहास-लेखकों में सबसे बढ़कर खुशामदी था, इस बात का उल्लेख न कर इसके विरुद्ध यह लिखा है कि राणा ने मानसिंह का स्वागत कर अधीनता के साथ शाही खिलअत पहन ली और उसे अपने महलों में लेजाकर उसके साथ दग़ा करना चाहा, जिसका हाल मालूम होते ही मानसिंह वहां से चला गया[4]।

---

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३९१–९२; वीरविनोद; भाग २, पृ० १४७-४८।

(२) प्रतापसिंहेऽथ नृपः कच्छवाहेन मानिना ।

मानसिंहेन तस्यासीद्वैमनस्यं भुजेर्विधौ ॥ २१ ॥

अकबरप्रभोः पार्श्वे मानसिंहस्ततो गतः ।......॥ २२ ॥

राजप्रशस्तिमहाकाव्य; सर्ग ४।

(३) वंशभास्कर; पृ० २२५१। वंशभास्कर में इस घटना का महाराणा उदयसिंह के समय होना और कछवाहा भगवन्तदास (भगवानदास) का साथ होना माना है, जो ठीक नहीं है। यह घटना महाराणा प्रतापसिंह के समय की ही है।

(४) अकबरनामा; इलियट्; जि० ६, पृ० ४२–४३।

यह कथन सर्वथा अविश्वसनीय है, क्योंकि बादशाह का महत्त्व बताने के लिये झूठमूठ ही लिखा गया है, महाराणा का अधीनता के साथ ख़िलअत पहनना तो दूर रहा, वह तो अकबर को बादशाह नहीं, किन्तु तुर्क कहा करता था, जैसा कि आगे बतःया जायगा। स्वयं जयपुर के इतिहास सम्बन्धी 'जयसिंहचरित्र' में, जो राम कवि का बनाया हुआ है, लिखा है कि मानसिंह ने भोजन के समय कहा कि जब आप भोजन नहीं करते तब हम क्यों करें। राणा ने कहलाया कि कुंवर आप भोजन कीजिये, अभी मुझे कुछ गिरानी है, पीछे से मैं भोजन करलूंगा। कुंवर ने कहा कि मैं आपकी इस गिरानी का चूर्ण दे दूंगा। फिर कुंवर कांसे (थाल) को हटाकर अपने साथियों सहित उठ खड़ा हुआ और रूमाल से हाथ पोंछकर उसने कहा कि चुल्लू तो फिर आने पर करूंगा[२]।

---

(१) अबुलफ़ज़ल ने तो यह भी लिख दिया है कि जब भगवन्तदास (भगवानदास) गोगूंदे पहुंचा, तब राणा उसको अपने यहां ले गया और उसके साथ अपने पुत्र अमरा (अमरसिंह) को राणा ने बादशाह की सेवा में भेज दिया और यह भी कहा कि जब मेरा चित्त शान्त होगा तब मैं भी उपस्थित हो जाऊंगा (एच. बेवरिज कृत अकबर नामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० ३, पृ० ९२–९३)। अबुलफ़ज़ल का यह कथन भी सर्वथा कल्पित है। यदि महाराणा ने अधीनता के साथ ख़िलअत पहन ली होती और अपने ज्येष्ठ कुंवर अमरसिंह को भगवन्तदास (भगवानदास) के साथ बादशाही दरबार में भेज दिया होता तो फिर अकबर को महाराणा पर लगातार चढ़ाइयां करने की आवश्यकता ही न रहती। बादशाह जहांगीर के साथ महाराणा अमरसिंह की सुलह होने पर उसने अपने ज्येष्ठ कुंवर कर्णसिंह को उक्त बादशाह के दरबार में भेज दिया, जिसको उसने अपने लिये बड़ा ही गौरव समझा, जो उसके पिता अकबर को भी प्राप्त नहीं हुआ था, जैसा कि आगे बतलाया जावेगा।

दोहा

(२) राना सों भोजन समय गही मान यह बान।
हम क्यों जैवें आपहू जैंवत हो किन आन॥
कुंवर आप आरोगिये राना भाख्यो हेरि।
मोहि गरानी सी कछू अबै जैइहूं फेरि॥
कही गरानी की कुंवर भई गरानी जोहि।
अटक नहीं कर देऊंगो चूरण चूरण तोहि॥
दियो ठेल कांसो कुंवर उठे सहित निज साथ।
चुलू आन भरि हौं कह्यौ पौंछ रुमालन हाथ॥

कुंवर मानसिंह को मेवाड़ पर भेजने का कारण

मेवाड़ पर कुंवर मानसिंह के भेजे जाने के विषय में 'इक़बालनामे जहांगीरी' का कर्ता मौतमिदखां लिखता है—"कुंवर मानसिंह, जो इसी दरबार का तैयार किया हुआ खास बहादुर आदमी है और जो फ़र्ज़न्द (बेटा) के ख़िताब से सम्मानित हो चुका है, अजमेर से कई मुसलमान और हिन्दू सरदारों के साथ राणा को पराजित करने के लिये भेजा गया। इसको भेजने में बादशाह का यही अभिप्राय था कि वह राणा की ही जाति का है और उसके बाप दादे हमारे अधीन होने से पहले राणा के अधीन और ख़िराजगुज़ार रहे हैं; इसको भेजने से संभव है कि राणा इसे अपने सामने तुच्छ और अपना अधीनस्थ समझकर लज्जा और अपनी प्रतिष्ठा के ख़याल से लड़ाई में सामने आ जाय और युद्ध में मारा जाय[1]"। फिर उसी पुस्तक में आगे लिखा है—"कुंवर मानसिंह शाही फ़ौज के साथ मांडलगढ़ पहुंचा और वहां सेना की तैयारी के लिये कुछ दिन ठहरा। राणा ने अपने गर्व के कारण उसे अपने अधीनस्थ जमींदारों में ही समझकर उसको उपेक्षा की दृष्टि से देखा और यह सोचा कि मांडलगढ़ पहुंच कर ही लड़ें[2]"।

उपर्युक्त कथन ठीक है, क्योंकि आंबेर का राज्य महाराणा कुंभा ने अपने अधीन किया था (पृ० ६१६), पृथ्वीराज राणा सांगा के सैन्य में था (पृ० ६८५) और भारमल का पुत्र भगवानदास भी पहले महाराणा उदयसिंह की सेवा में रहा था (पृ० ७३२)। जब से राजा भारमल ने अकबर की सेवा स्वीकार की, तब से आंबेरवालों ने मेवाड़ की अधीनता छोड़ दी।

बादशाह ने अजमेर पहुंचने पर महाराणा प्रताप को अधीन करने के विचार से कुंवर मानसिंह[3] को गाज़ीखां बदख़्शी, ख़्वाजा मुहम्मद रफ़ी बदख़्शी, शियाबुद्दीन

---

(१) इक़बालनामा (मुंशी देवीप्रसाद के संग्रहालय की पुस्तक); पृ० ३०३।

(२) वही; पृ० ३०५।

(३) कर्नल टॉड ने इस चढ़ाई में मुख्य सेनापति शाहज़ादा सलीम (पीछे से जहांगीर) का होना और उसके साथ मानसिंह तथा महाबतखां का होना लिखा है (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३६२-६३) जो ठीक नहीं है, क्योंकि सलीम का जन्म हि० स० ९७७ ता० १७ रबि-उल् अव्वल (वि० सं० १६२६ आश्विन वदि ५=ई० स० १५६९ ता० ३१ अगस्त) बुधवार को हुआ था, अतएव इस चढ़ाई के समय उसकी आयु ६ वर्ष की थी, ऐसी अवस्था में उसका

मानसिंह का अजमेर से मेवाड़ को रवाना होना

गुरोह, पायन्दा कज्ज़ाक, अलीमुराद उज़बक, काज़ीखां, इब्राहीम चिश्ती, शेख़ मंसूर, ख़्वाजा गयासुद्दीन, अली आसिफखां, सैयद अहमदखां, सैयद हाशिमखां, जगन्नाथ[1], सैयद राजू, महतरखां, माधोसिंह[2], मुजाहिदबेग, खंगार[3] और लूणकर्ण[4] आदि सरदारों तथा ५००० सवारों के साथ हि० स० ६८४ ता० २ मुहर्रम (वि० सं० १६३३ वैशाख सुदि ३=ई०स० १५७६ ता० २ अप्रेल) को मेवाड़ पर भेजा[5]। वह मांडलगढ़ पहुंच कर सेना की तैयारी करने लगा। उसके अजमेर से मांडलगढ़ पहुंचने का समाचार पाकर महाराणा कुंभलगढ़ से चलकर गोगूंदे पहुंचा और वहां अपने सरदारों से युद्ध के लिये सलाह की। महाराणा का विचार मांडलगढ़ जाकर ही मानसिंह से लड़ाई करने का था, परन्तु उसके सरदारों ने कहा कि इस समय कुंवर मानसिंह शाही बल पर आया है इसलिये पहाड़ों के सहारे से ही शाही

सेनापति नियत होना किसी प्रकार संभव नहीं। फ़ारसी तवारीख़ों में भी कहीं उसके इस चढ़ाई में शामिल होने का उल्लेख नहीं है। इसी तरह उक्त कर्नल ने महाबतखां को महाराणा प्रताप के भाई सगर का पुत्र, कंधार का हाकिम और उसका हिन्दूधर्म को छोड़कर मुसलमान होना माना है, ये तीनों बातें भी ठीक नहीं हैं, क्योंकि उस समय तक न तो सगर बादशाही सेवा में गया था और न महाबतखां सगर का पुत्र था और न वह हिन्दू से मुसलमान हुआ था। वह तो क़ाबुल के रहनेवाले ग़ोर बेग का बेटा था और उसका असली नाम जमानबेग था। उसकी मृत्यु हि० स० १०४४ (वि० सं० १६९१=ई० स० १६३४) में हुई थी।

(१) जगन्नाथ कछवाहा राजा भारमल का छोटा पुत्र और भगवानदास का छोटा भाई था, जो मांडल (मेवाड़) में मरा। उसकी छत्री मांडल के तालाब के निकट बनी हुई है, जिसकी प्रतिष्ठा वि० सं० १६७० मार्गशीर्ष सुदि ११ को हुई थी (छत्री के शिलालेख से)।

(२) माधोसिंह कछवाहा राजा भगवानदास के छोटे भाई भगवन्तदास का ज्येष्ठ पुत्र और मानसिंह का बड़ा भाई था।

(३) खंगार राजा भारमल के छोटे भाई जगमाल का पुत्र था।

(४) लूणकर्ण कछवाहों की शेखावत शाखा के मूल पुरुष शेखा का प्रपौत्र, रायमल का पौत्र और सूजा का पुत्र था। उसके वंश में सांभर का इलाक़ा चला आता था। उसने राजा भारमल के साथ बादशाही सेवा स्वीकार की थी। अच्छी सेवा व बुद्धिमानी के कारण वह अकबर का प्रीतिपात्र हुआ और उसको रायरायां का ख़िताब भी मिला था।

(५) मुंशी देवीप्रसाद; अक़बरनामा; पृ० ७८-७९। इक़बालनामा; पृ० ३०३। मुन्तख़बुत्तवारीख़ (डब्ल्यू. एच. लोए कृत अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० २, पृ० २३९। अबुल्फ़ज़ल के अक़बरनामे का बैवरिजकृत अनुवाद; जि० ३, पृ० २३६-३७।

सेना का मुक़ाबला करना चाहिये। महाराणा ने भी इस सलाह को पसन्द किया और सेना की तैयारी शुरू कर दी।

मानसिंह ने मांडलगढ़ से चलकर मोही गाँव होते हुए खमणोर के समीप हल्दीघाटी[1] से कुछ दूर बनास नदी के किनारे डेरा डाला। महाराणा भी अपनी सेना तैयार कर गोगूंदे से चला और मानसिंह से तीन कोस की दूरी पर आ ठहरा[2]।

महाराणा की सेना में ग्वालियर का रामसिंह तंवर अपने पुत्रों-शालिवाहन, भवानीसिंह तथा प्रतापसिंह सहित, भामाशाह[3] और उसका भाई ताराचन्द[4],

---

(१) हल्दीघाटी नाथद्वारे से अनुमान ११ मील दक्षिण पश्चिम में है। गोगून्दा और खमणोर के बीच विकट पहाड़ी श्रेणियां आ गई हैं, जिनमें से एक तंग रास्तेवाली घाटी को हल्दीघाटी कहते हैं। यहां की मिट्टी हल्दी जैसे पीले रंग की होने के कारण ही उसका हल्दी-घाटी नाम पड़ा है। वहां के पत्थरों पर पीली मिट्टी के लगने से वे भी ऊपर से पीले नजर आते हैं। मेवाड़ के कुछ लोग इसको हलदूघाटी भी कहते हैं, जो भ्रम ही है, क्योंकि हलदूघाटी हल्दीघाटी से भिन्न है और वह उदयपुर से जयसमुद्र जाते हुए मार्ग में आती है। हल्दीघाटी को देखने की इच्छा रखनेवालों को चाहिये कि वे उदयपुर से वहां न जावें, क्योंकि वह मार्ग विकट पहाड़ी श्रेणियों से भरा हुआ होने के कारण बड़ा ही दुर्गम है। सुगम मार्ग नाथद्वारे से है। वहां से अनुमान ८ मील पर खमणोर गांव है। जहां से ३ मील के अंतर पर हल्दीघाटी है। दर्शक उसको एक बार लांघकर उसके पीछे का दृश्य भी अवश्य देखें, जिससे उनको बदायूनी के लिखे हुए युद्ध का यथार्थ ज्ञान हो जायगा।

(२) वीर-विनोद; भाग २, पृ० १५१।

(३) भामाशाह कावड़िया गोत्र के ओसवाल जाति के महाजन भारमल का बेटा था। महाराणा सांगा ने उसे (भारमल को) अलवर से बुलाकर रणथंभोर का किलेदार नियत किया था। पीछे से जब हाडा सूरजमल (बूंदीवाला) वहां का किलेदार नियत हुआ उस समय भी रणथंभोर का बहुतसा काम उसी के हाथ में था। भामाशाह और उसका भाई ताराचंद वीर प्रकृति के पुरुष थे। महाराणा ने महासहानी रामा के स्थान पर उसको अपना प्रधान बनाया।

भामो परधानो करे, रामो कीधो रद्द।

(प्राचीन पद्य)।

महाराणा उसकी बड़ी खातिर करता था और वह दिवेर के शाही थाने पर हमला करने के समय भी राजपूतों के साथ था।

(४) ताराचन्द गोड़वाड़ का हाकिम भी रहा था और उस समय सादड़ी में रहता था। उसने सादड़ी के बाहर एक बारादरी और बावड़ी बनवाई। उसके पास ही ताराचन्द, उसकी चार औरतें, एक खवास, छः गायनें, एक गवैया और उस गवैये की औरत की मूर्तियां पत्थरों पर खुदी हुई हैं (सरस्वती; भाग १८, सं० २, पृ० ६७)।

झाला मानसिंह (सज्जावत[१]), झाला बीदा (सुलतानोत[२]), सोनगरा मानसिंह (अक्षयराजोत), डोडिया भीमसिंह[३], रावत कृष्णदास (चूंडावत[४]), रावत नेतसिंह (सारंगदेवोत[५]), रावत सांगा[६], राठोड़ रामदास (बदनोर के प्रसिद्ध जयमल का सातवां पुत्र), मेरपुर का राणा पुंजा, पुरोहित गोपीनाथ, पुरोहित जगन्नाथ, पडिहार कल्याण, बच्छावत महता जयमल, महता रत्नचन्द खेतावत, महासानी जगन्नाथ, राठोड़ शंकरदास[७], चारण जेसा और केशव (सौदा बारहठ[८]) आदि विद्यमान थे। इनके अतिरिक्त हकीमखां सूर भी मुगलों से लड़ने के लिये राणा की सेना में सम्मिलित हुआ[९]।

युद्ध छिड़ने के पूर्व एक दिन मानसिंह थोड़े से साथियों समेत शिकार को गया था, जिसकी सूचना गुप्तचरों ने महाराणा को दी और सामंतों ने निवेदन किया कि इस अच्छे अवसर को हाथ से न जाने देना चाहिये और शत्रु को मार देना चाहिये, परन्तु वीर महाराणा ने झाला बीदा (मानसिंह) की इच्छानुसार यही उत्तर दिया कि इसतरह छल और धोखे से शत्रु को मारना सच्चे क्षत्रियों का काम नहीं[१०]।

हल्दीघाटी से कुछ ही दूर खमणोर के निकट दोनों सेनाओं का भीषण युद्ध

---

(१) देलवाड़ेवालों का पूर्वज।

(२) बड़ी सादड़ीवालों का पूर्वज।

(३) सरदारगढ़ (लावा) वालों का पूर्वज।

(४) सलूंबरवालों का पूर्वज।

(५) रावत नेतसी (कानोड़वालों का पूर्वज), रावत जोगा का, जो महाराणा सांगा की [illegible] में मारा गया था, पौत्र और रावत [illegible] का, जो [illegible] में [illegible] था, पुत्र था।

(६) [illegible]वालों का मूलपुरुष।

(७) अकबर के साथ की चित्तौड़ की लड़ाई में मारे जानेवाले ठाकुर नेतसी का पुत्र और [illegible] का पूर्वज।

(८) जेसा और केशव दोनों सोन्याणावाले चारणों के पूर्वज थे।

(९) [illegible] वीरविनोद, भाग २, पृ० १५१ और [illegible]।

(१०) [illegible] पृ० ७२-७३।

हल्दीघाटी का रणक्षेत्र

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर.

भरा एक थाल नज़र किया, परन्तु शाहज़ादे ने केवल तीन घोड़े लेकर बाक़ी सब चीज़ें वापस कर दीं[1]"। जहांगीर के इन कथनों से महाराणा अमरसिंह के समय की मेवाड़ की सम्पत्ति का कुछ अनुमान पाठक कर सकेंगे। यदि महाराणा प्रतापसिंह के पास कुछ भी सम्पत्ति न होती, तो उसका पुत्र महाराणा अमरसिंह सन्धि के समय ही इतने रत्नादि कहां से प्राप्त कर सकता?

अमरसिंह के पीछे उसका ज्येष्ठ पुत्र कर्णसिंह राजगद्दी पर बैठा, जिसका सारा समय अपने उजड़े हुए इलाक़ों को आबाद करने में लगा। तदनन्तर महाराणा जगतसिंह मेवाड़ का शासक हुआ, जो बड़ा ही उदार राजा था। उसने लाखों रुपये लगाकर उदयपुर में जगन्नाथराय (जगदीश) का मन्दिर बनवाया और उसकी प्रतिष्ठा में लाखों रुपये खर्च किये। उसने अनेक बहुमूल्य दान किये, जिनमें से 'कल्पवृक्ष' दान विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि कल्पवृक्ष का प्रत्येक अंग रत्नों से ही बनाया गया था। उसने सैकड़ों हाथी, हज़ारों घोड़े और बहुत से गांव दान किये[2]। प्रारंभ में वह प्रतिवर्ष अपनी जन्मगांठ के दिन चांदी की तुला करता था[3], परन्तु वि० सं० १७०५ (ई० स० १६४८) से प्रतिवर्ष उस अवसर पर सोने की तुला करने लगा[4]। उसकी दानशीलता बहुत ही प्रसिद्ध है। उसके पीछे उसका ज्येष्ठ कुंवर राजसिंह मेवाड़ के सिंहासन पर वि० सं० १७०६ (ई० स० १६५२) में बैठा। उसने उसी वर्ष के मार्गशीर्ष मास में एकलिङ्गजी जाकर वहां रत्नों का तुलादान किया[5]। समस्त भारतवर्ष में रत्नों के तुलादान का यही एक प्राचीन लिखित प्रमाण मिला है। उसने राजसमुद्र नाम का प्रसिद्ध तालाब बनवाया, जिसमें १०५०७५८४ रुपये व्यय हुए[6]।

ऊपर उद्धृत किये हुए प्रमाणों से पाठकों को उस समय की उदयपुर राज्य की समृद्धि का ठीक-ठीक अनुमान हो सकेगा। हम ऊपर बतला चुके हैं कि

(१) तुज़ुके जहांगीरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; जिल्द १, पृ० ३४५।

(२) जगन्नाथराय के मन्दिर की प्रशस्ति; श्लोक ११०–११।

(३) राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ५, श्लोक ३४।

(४) वही; सर्ग ५, श्लोक ३५–३६।

(५) उक्त तुलादान की प्रशस्ति; श्लोक १८। यह प्रशस्ति थोड़े ही वर्ष पूर्व मिली है और इस समय उदयपुर के विक्टोरिया हॉल में सुरक्षित है।

(६) राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग २१, श्लोक २२।

महाराणा उदयसिंह, प्रतापसिंह और अमरसिंह को तो सम्पत्ति सञ्चित करने का अवकाश ही नहीं मिला। महाराणा कर्णसिंह अपने उजड़े हुए राज्य को आबाद करने में ही लगा रहा। महाराणा जगतसिंह और राजसिंह को बाहर से कोई बड़ी सम्पत्ति नहीं मिली। अतएव यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि यह सारी सम्पत्ति कुंभा और सांगा की संग्रह की हुई थी और महाराणा प्रतापसिंह के समय ज्यों की त्यों विद्यमान थी। ऐसी दशा में यह मानना, कि प्रतापसिंह के पास अकबर के साथ की लड़ाइयों के समय सेना का ख़र्च चलाने के लिये कुछ भी द्रव्य न था, जिससे वह मेवाड़ छोड़कर सिन्ध में राज्य स्थापित करने जा रहा था, परन्तु मंत्री भामाशाह के अपनी सारी सम्पत्ति नज़र करने पर अपनी मातृभूमि को लौट आया, सर्वथा निर्मूल है। कर्नल टॉड का उपर्युक्त कथन सुनी सुनाई बातों के आधार पर लिखे जाने के कारण विश्वास के योग्य नहीं है। वस्तुतः महाराणा प्रताप बहुत सम्पत्तिशाली था और उसके पास धन की कोई कमी न थी। इसीसे वह तथा उसका पुत्र दोनों बरसों तक बादशाहों से लड़ने में समर्थ हुए थे।

महाराणा चावंड के महलों में रहते समय बीमार पड़ा[1]। उन दिनों उसके स्वामिभक्त सरदार, जो उसकी आपत्ति के समय साथ रहे थे, उसके पास बैठे रहते थे। अंतिम दिन वह अत्यन्त दुःखी था और उसके प्राण शान्ति से पयान नहीं करते थे। उसकी ऐसी अवस्था देखकर सरदारों को दुःख हो रहा था, जिससे सलूंबर के रावत ने साहस कर पूछा—'क्या कारण है कि आपके प्राण शान्ति के साथ इस शरीर को नहीं छोड़ते'? उसने उत्तर दिया कि मैं अपने पुत्र अमरसिंह का स्वभाव जानता हूं, वह कुछ आराम-पसन्द है, इसलिये मुझे उससे आशा नहीं कि वह आपत्ति

महाराणा का स्वर्गवास

---

(१) महाराणा का देहान्त किस बीमारी से हुआ यह अनिश्चित है, तो भी ऐसी प्रसिद्धि है कि एक दिन शेर का शिकार करते समय उसने कमान बड़े ज़ोर से खैंची, जिससे अंग मोड़ते समय आँत में कुछ ख़राबी हो गई और उसी बीमारी से उसका देहांत हो गया।

ईश्वर की माया अपार है कि जो वीर मुसलमानों के साथ की अनेक लड़ाइयों में कभी घायल न हुआ और जो अपनी तलवार से अनेक वीरों को मृत्युशय्या पर सुलाता रहा, वही वीर कमान खींचने से बीमार होकर इस संसार से सदा के लिये बिदा हो गया (शेखावत भूरसिंह; महाराणायशप्रकाश; पृ० १३६)।

सहकर देश और वंश के गौरव की रक्षा कर सके। यदि आप लोग मेरे पीछे मेरे राज्य के गौरव की रक्षा करने का प्रण करें तो मेरी आत्मा शान्ति के साथ इस शरीर को छोड़ सकती है। इसपर सरदारों ने बापा रावल की गद्दी की शपथ खाकर वैसी ही प्रतिज्ञा की, जिससे महाराणा को संतोष हो गया और उसका प्राणपक्षी शान्तिपूर्वक प्रयाण कर गया। यह घटना वि० सं० १६५३ माघ सुदि ११ (ई० स० १५९७ ता० १९ जनवरी) को हुई[1]।

चावंड से अनुमान डेढ़ मील पर बंडोली गांव के निकट बहनेवाले एक नाले के तट पर महाराणा का अग्नि-संस्कार हुआ, जहां उसके स्मारकरूप श्वेत पाषाण की आठ स्तंभवाली एक छोटी सी छत्री बनी हुई है, जो इस समय जीर्ण शीर्ण दशा में है।

जब महाराणा के स्वर्गवास का समाचार बादशाह अकबर के पास पहुंचा, तब वह उदास होकर स्तब्ध सा हो गया। उसकी यह दशा देखकर दरबारी लोगों को आश्चर्य हुआ कि राणा की मृत्यु से तो बादशाह को प्रसन्न होना चाहिये था न कि उदास। उस समय चारण दुरसा आढ़ा[2] ने, जो वहां उपस्थित था, नीचे लिखा हुआ छप्पय कहा—

---

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० १६४।

(२) आढ़ा गोत्र का चारण दुरसा वीर प्रकृति का पुरुष होने से वीर-रसवाली कविता लिखने के लिये राजपूताने में प्रसिद्ध है। वह मारवाड़ का रहनेवाला था और सिरोही के राव सुरताण के साथ की जोधपुरवाले रायसिंह (चन्द्रसेनोत) तथा सीसोदिया जगमाल की लड़ाई के समय राठोड़ रायसिंह की सेना में रहकर लड़ता हुआ सख़्त घायल हुआ था। रण-खेत संभालते समय उसको बुरी तरह से घायल देखकर सुरताण के एक सरदार ने कहा कि इसको भी दूध पिलाना (मार डालना) चाहिये। इसपर दुरसा ने कहा—'मैं राजपूत नहीं, चारण हूं, राजपूतों को मुझे मारना उचित नहीं'। इसपर उससे कहा गया कि यदि तुम चारण हो तो इस समरा देवड़ा की प्रशंसा में, जो अभी मारा गया है, कोई दोहा कहो। इस पर उसने तत्क्षण यह दोहा कहा—

धर रावां जश डूंगरां, ब्रद पोतां शत्र हाण।
समरे मरण सुधारियो, चहु थोकां चहुआण॥

आशय—चौहान समरा ने चारों तरह से अपनी मृत्यु को सार्थक किया, अर्थात् राव (सुरताण) की भूमि की रक्षा की, पहाड़ों की तारीफ़ करवाई, अपने वंशजों के लिये सम्मान छोड़ गया और शत्रुओं को हानि पहुंचाई।

अस लेगो अणदाग, पाघ लेगो अणनामी ।
गौ आडा गवडाय, जिको बहतो धुर वामी ॥
नवरोजे नह गयो, न गौ आतसां नवल्ली ।
न गौ झरोखाँ हेठ, जेठ दुनियाण दहल्ली ॥
गहलोत राण जीती गयो, दसण मूंद रसणा डसी ।
नीसास मूक भरिया नयण, तो मृत शाह प्रतापसी ॥

आशय—हे गुहिलोत राणा प्रतापसिंह ! तेरी मृत्यु पर शाह (बादशाह) ने दांतों के बीच जीभ दबाई और निश्वास के साथ आंसू टपकाये, क्योंकि तूने अपने घोड़े को दाग़[1] नहीं लगने दिया, अपनी पगड़ी को किसी के आगे नहीं झुकाया[2], तू अपना आड़ा (यश) गवा गया, तू अपने राज्य के धुरे को बांये

यह दोहा सुनते ही राव सुरताण बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसको पालकी में बिठलाकर अपने साथ ले गया और उसके घावों का इलाज करवाया। फिर उसके आराम होने पर उसको अपना पोलपात (राजाओं तथा सरदारों के विवाह के समय पोल अर्थात् द्वार पर धर से नेग लेनेवाला मुख्य चारण) बनाया और उसको कई गांव जागीर में दिये। महाराणा प्रतापसिंह की वीरता की प्रशंसा में उसने बिरुदछिहत्तरी नाम का ७६ सोरठोंवाला एक काव्य बनाया, जिसके कई सोरठे राजपूतों, चारणों आदि के मुख से सुनने में आते हैं। उदाहरणार्थ उसके कुछ सोरठे आगे दिये जायेंगे।

(१) बादशाह अकबर ने घोड़ों की पीठ पर दाग़ लगाने की प्रथा वि० सं० १६३१ (ई० स० १५७४) से अपने राज्य में प्रचलित की थी, जिससे बादशाह की नौकरी करनेवाले तमाम राजाओं, अमीरों आदि के घोड़ों के इस अभिप्राय से दाग़ लगाया जाता था कि घोड़े को देखते ही यह ज्ञात हो जाय कि यह घोड़ा बादशाही सेवक का है। दाग़ की प्रथा सबसे पहले अलाउद्दीन ख़िलजी ने चलाई थी, परन्तु उसका प्रचार अधिक समय तक न रहा। उसके पीछे सूरवंशी शेरशाह ने उसका अनुकरण किया, परंतु वह ५ वर्ष राज्य कर मर गया, जिससे उसके पीछे वह न चली। फिर अकबर ने नियमित रूप से उसे जारी किया।

(२) महाराणा को आपत्ति सहना तो स्वीकार था, परंतु किसी हिन्दू या मुसलमान के आगे सिर झुकाना स्वीकार न था। एक समय उसने एक भाट को, उसकी कविता पर प्रसन्न होकर, इनाम के साथ अपने सिर की पगड़ी भी दे दी थी। वह भाट भी महाराणा की पगड़ी के इस सम्मान को भली भांति जानता था। एक बार जब वह बादशाह अकबर से मुजरा करने को गया तब उसने पगड़ी उतारकर हाथ में ले ली और नंगे सिर ही मुजरा किया। जब बादशाह ने ऐसा करने का कारण पूछा तो उसने निवेदन किया कि यह पगड़ी उस महाराणा

कंधे से चलाता रहा, नौरोज़ में न गया, न आतसों (बादशाही डेरों) में गया, कभी शाही झरोखे के नीचे खड़ा न रहा और तेरा रौब दुनियां पर ग़ालिब था, अतएव तू सब तरह से जीत गया।

यह सुनकर दरबारियों ने सोचा कि बादशाह इसपर अवश्य क्रुद्ध होगा, परंतु उसने तो उलटा उसे इनाम देकर कहा कि इस कवि ने ही मेरा ठीक भाव समझा है।

महाराणा की संतति

महाराणा प्रतापसिंह के ११ राणियों से १७ कुंवर अमरसिंह, भगवानदास, सहसा[१] (सहसमल), गोपाल, कचरा[२], सांवलदास, दुर्जनसिंह, कल्याणदास[३], चांदा[४] (चन्द्रसिंह), शेखा[५], पूरणमल[६] (पूरा), हाथी[७], रामसिंह[८], जसवन्तसिंह[९], माना, नाथा और रायभाण हुए[१०]।

प्रतापसिंह की है, जिसने कभी भी किसी के आगे सिर नहीं झुकाया। इसलिये मैंने भी उसका अदब रखा (मुंशी देवीप्रसाद; प्र० च०; पृ० २८-२९)। राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ४, श्लोक ४६-५०।

(१) सहसा के वंश में धर्यावदवाले हैं।

(२) कचरा के वंश में ठिकाना जोलावास (गोगून्दा के अन्तर्गत) है।

(३) कल्याणदास के वंश में परसाद का ठिकाना है।

(४) चांदा के वंश में ठिकाना आंजणा (दरीबा के पास) है।

(५) शेखा के वंश में नाणा, बहेड़ा और बीजापुर (गोडवाड़ में) के सरदार हैं।

(६) पूरा के वंशज पूरावत कहलाते हैं। उसके वंश में ठिकाने मंगरोप, गुरलां, गाडरमाला तथा सींगोली हैं।

(७) हाथी के वंश में बोर्यास, दांतड़ा और गेंदल्या के स्वामी हैं।

(८) रामसिंह की संतति में उदल्यावास और मानकरी के ठिकाने हैं।

(९) जसवन्तसिंह के वंशज कारूंडा और जलोदा में हैं।

महाराणा उदयसिंह, प्रतापसिंह तथा उनके पीछे के मेवाड़ के महाराणाओं के वंशज सामान्यतः राणावत कहलाते हैं, तो भी महाराणा उदयसिंह के पुत्र शक्ता के वंशज शक्तावत और कान्ह के कान्हावत कहलाते हैं। कान्हावतों के मुख्य ठिकाने अमरगढ़ और आमलदा हैं।

(१०) मुहणोत नैणसी ने १५ पुत्रों का होना लिखा है, जिनमें नाथा, दुर्जनसिंह और रायभाण के नाम नहीं हैं और करमसी का नाम दिया है, जो उदयपुर के बड़वे की ख्यात में नहीं मिलता।

हिन्दूपति महाराणा प्रतापसिंह के अनेक आपत्तियां सहने पर भी बादशाह अकबर के आगे सिर न झुकाने का अटलव्रत, उसकी वीरता, कुलाभिमान और उसके वंश की बड़ी प्रतिष्ठा का बहुत कुछ वर्णन मुसलमानों, यूरोपियनों आदि की लिखी तवारीख़ों में मिलता है, इतना ही नहीं, किन्तु राजपूताना आदि के अनेक समकालीन कवियों से लगाकर अबतक के कवि उसके गौरव और हिन्दूधर्म की रक्षा आदि की प्रशंसा करते रहे हैं। उदाहरणार्थ कुछ अवतरण नीचे देते हैं—

महाराणा का यशवर्णन

आढ़ा दुरसाकृत सोरठे—

अकबर गरव न आण, हींदू सह चाकर हुवां ।
दीठो कोई दीवाण, करतो लटका कटहडै ॥

आशय—हे अकबर! सब हिन्दू (राजाओं) के तेरे चाकर हो जाने पर गर्व मत कर। क्या किसीने दीवाण (महाराणा) को शाही कटहरे के आगे झुक झुक कर सलाम करते हुए देखा है?

कदे न नामै कंध, अकबर ढिग आवै न ओ ।
सूरजवंस संबंध, पाळे राण प्रतापसी ॥

आशय—वह (महाराणा) न तो कभी अकबर के पास आता है और न सिर नमाता है। राणा प्रतापसिंह तो सूर्यवंश की मर्यादा का पालन करता है।

सुखहित स्याल समाज, हिंदू अकबर वस हुआ ।
रोसीलो मृगराज, पजै न राण प्रतापसी ॥

आशय—अपने सुख के निमित्त गीदड़ों के झुंड के समान हिन्दू अकबर के अधीन हो गये, परन्तु खिझे हुए सिंह जैसा राणा प्रतापसिंह उससे कभी नहीं दबता।

लोपै हिंदू लाज, सगपण रोपे तुरक सूं ।
आरजकुल री आज, पूंजी राण प्रतापसी ॥

आशय—हिन्दू (राजा) कुल की लज्जा को छोड़कर यवनों से सम्बन्ध जोड़ते हैं, अतएव अब तो आर्यकुल की सम्पत्ति राणा प्रतापसिंह ही है।

अकबर पथर अनेक, कै भूपत भेळा किया ।
हाथ न लागो हेक, पारस राण प्रतापसी ॥

आशय—अकबर ने कई एक पत्थररूपी राजाओं को अपने यहां एकत्र कर लिया है, परंतु पारसरूपी एक राणा प्रतापसिंह ही उसके हाथ नहीं लगा।

अकबर समँद अथाह, तिंह डूबा हिंदू तुरक ।
मेवाड़ो तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी ॥

आशय—अकबर रूपी अथाह समुद्र (जलाशय) में हिन्दू और मुसलमान डूब गये, परंतु मेवाड़ का स्वामी प्रतापसिंह कमल के पुष्प[1] के समान उसके ऊपर ही शोभा दे रहा है।

अकबरिये इक बार, दागल की सारी दुनी ।
अणदागल असवार, एकज राण प्रतापसी ॥

आशय—अकबर ने एक बार में ही सारी दुनियां के दाग़ लगा दिया है, परन्तु एक राणा प्रतापसिंह ही बिना दाग़वाले घोड़े पर सवार होता है।

अकबर घोर अंधार, ऊँघाणा हिंदू अवर ।
जागै जगदातार, पोहरै राण प्रतापसी ॥

आशय—अकबर रूपी घोर अंधेरी रात में अन्य सब हिन्दू नींद में सो रहे हैं, परन्तु जगत् का दाता प्रतापसिंह जगता हुआ पहरे पर खड़ा है।

गोहिल कुल धन गाढ, लेवण अकबर लालची ।
कोडी दै नह काढ, पणधर राण प्रतापसी ॥

आशय—गोहिल (गुहिलोत) वंशरूपी गहरी सम्पत्ति को लालची अकबर लेना चाहता है, परन्तु प्रणवीर राणा प्रतापसिंह एक कौड़ी भी लेने नहीं देता।

जोधपुर के महाराजा मानसिंह-कृत सोरठा[2]—

गिर पुर देस गँमाड, भमिया पग पग भाखरां ।
मह अंजसै मेवाड़, सह अंजसै सीसोदिया ॥

---

(१) कवि कल्पना है कि कमल का पुष्प सदा जल के ऊपर ही रहता है, जल के बढ़ने के साथ उसकी डंडी भी बढ़ती जाती है, जिससे वह जल में नहीं डूबता।

(२) यह सोरठा एक सरदार के महाराणा प्रतापसिंह की आपत्ति का वर्णन करने पर महाराजा ने कहा था।

आशय—(महाराणा प्रतापसिंह) अपने पर्वत, नगर, और देश को खोकर पहाड़ों में जगह जगह फिरा, इसी से आज मेवाड़ देश और सीसोदिया कुल गर्व करता है।

बीकानेर के राठोड़ पृथ्वीराज-कृत दोहा—

माई एहा पूत जण, जेहा राण प्रताप।
अकबर सूतो औधकै, जांण सिराणै सांप॥

आशय—हे माता! ऐसे पुत्र को जन्म दे जैसा कि राणा प्रतापसिंह है, जिसको सिरहाने के पास रहा हुआ सांप जानकर अकबर चौंक उठता है।

धर बांकी दिन पाधरा, मरद न मूकै माण।
घणां नरिंदां घेरियो, रहै गिरंदां राण॥

आशय—जिसकी भूमि अत्यन्त विकट (पहाड़ोंवाली) है, जिसके दिन अनुकूल है, जो मर्द अपने अभिमान को नहीं छोड़ता वह राणा (प्रतापसिंह) बहुत से राजाओं से घिरा हुआ पहाड़ों में रहा करता है[1]।

प्रातःस्मरणीय हिन्दूपति वीरशिरोमणि महाराणा प्रतापसिंह का नाम राजपूताने के इतिहास में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और गौरवास्पद है। राजपूताने के इतिहास को इतना उज्ज्वल और गौरवमय बनाने का अधिक श्रेय उसी को है। वह स्वदेशाभिमानी, स्वतन्त्रता का पुजारी, रण-कुशल, स्वार्थत्यागी, नीतिज्ञ, दृढ़ प्रतिज्ञ, सच्चा वीर और उदार क्षत्रिय तथा कवि था[2]। उसका आदर्श था, कि बापा रावल का वंशज किसी के आगे सिर नहीं झुकायेगा। स्वदेशप्रेम, स्वतन्त्रता और स्वदेशाभिमान उसके मूलमन्त्र थे। उसको अपने वीर पूर्वजों के गौरव का गर्व था[3]। वह कहा करता था कि यदि महाराणा सांगा और मेरे बीच कोई और न होता तो चित्तोड़ कभी मुसलमानों के हाथ न जाता। वह ऐसे समय मेवाड़ की गद्दी पर बैठा जब कि

महाराणा का व्यक्तित्व

(१) ऊपर दिये हुए सोरठे आदि मलसीसर ठाकुर भूरसिंह शेखावत-प्रकाशित 'महाराणा यशप्रकाश' से उद्धृत किये गये हैं।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; राजरसनामृत; पृ० १३-१४।

(३) अबुल्फज़ल ने लिखा है, कि उसको अपने पूर्व पुरुषों की वीरता का गर्व था (अकबरनामा; अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० ३, पृ० २४४)।

सहित, रावत नेतसी (सारंगदेवोत), राठोड़ रामदास, डोडिया भीमसिंह, राठोड़ शंकरदास आदि महाराणा के कई सरदार मारे गये।

हल्दीघाटी के सम्बन्ध में दोनों पक्षवाले अपनी अपनी विजय बतलाते हैं। मुसलमानों का कथन तो ऊपर दर्ज हो गया, दूसरे पक्ष के कथन के संबन्ध में उदयपुर के जगदीश के मन्दिर की श्रावणादि विक्रम संवत् १७०८ (चैत्रादि विक्रम संवत् १७०९) द्वितीय वैशाख सुदि १५ गुरुवार (ई० स० १६५२ ता० १३ मई) की प्रशस्ति में लिखा है—"अपनी प्यारी तलवार को हाथ में लिये प्रतापसिंह प्रातःकाल (युद्ध में) आया तो मानसिंहवाली शत्रुकी सेना ने छिन्न भिन्न होकर पैर संकोचते हुए पीठ दिखाई[1]"। राणा रासा आदि मेवाड़ से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तकों में भी महाराणा की विजय होना लिखा है।

जीर्णशीर्ण पर्वाने तथा मानसिंह के पुत्र दूदा के शिलालेख से पाया जाता है। कर्नल टॉड ने भी सादड़ी के झाला माना (मानसिंह) का इस युद्ध में मारा जाना लिखा है। कर्नल वाल्टर ने उसका दूसरा नाम बीदा लिखकर उसका मारा जाना बतलाया है। कर्नल टॉड ने यह भी लिखा है—'इस युद्ध की सेवा में उक्त माना की संतान को दाहिनी बैठक, महाराणा के सब राज्य-चिह्न, महलों के दरवाज़े तक नक्क़ारा बजाने का सम्मान मिला, जो अब तक जारी है और अन्य किसी सरदार को प्राप्त नहीं है' (टॉ; रा; जि० १, पृ० २६४)। टॉड का यह कथन ठीक है और अब तक इसका प्रचलन है, परन्तु यह इज़्ज़त तो झाला अज्जा के महाराणा सांगा और बाबर के खानवा के युद्ध में मारे जाने के समय से ही चली आती है, नई नहीं।

(१) *कृत्वा करे खड्गलतां स्ववल्लभां*
प्रतापसिंहे समुपागते प्रगे।
सा खंडिता मानवती द्विषच्चमूः
संकोचयन्ती चरणौ पराङ्मुखी ॥ ४१ ॥

(जगदीश के मन्दिर की प्रशस्ति; शिला १, अप्रकाशित)।

यह सारा श्लोक श्लेषपूर्ण है। इसका एक अर्थ ऊपर लिख दिया गया है। दूसरा भाव नायिका के सम्बन्ध का है, जिसका आशय यह है कि प्रातःकाल जब प्रतापसिंह खड्गलतारूपी अपनी वल्लभा (प्रिया) को हाथ में पकड़े हुए आया, तो उसको देख शत्रु-सेनारूपी मानवती खण्डिता हो गई और उलटे पैरों लौट गई।

खण्डिता वह नायिका है, जिसका नायक रात को किसी अन्य नायिका के साथ रहकर सवेरे उसके पास आवे और वह (नायिका) उसमें संभोग के चिह्न देखकर कुपित हो। मानवती

इस प्रकार दोनों पक्षों के कथनों पर विचार करते हुए यही मानना पड़ता है कि उस समय के संसार के सबसे बड़े सम्पन्न और प्रतापी बादशाह अकबर के सामने एक छोटे से प्रदेश का स्वामी प्रतापसिंह कुछ भी न था, क्योंकि मेवाड़ के बहुतसे नामी नामी सरदार बहादुरशाह और अकबर की चित्तौड़ की चढ़ाइयों में पहले ही मर चुके थे, जिससे थोड़े ही स्वामिभक्त सरदार उस (प्रतापसिंह) के लिये लड़ने को रह गये थे। मेवाड़ का सारा पूर्वी उपजाऊ इलाक़ा अकबर की चित्तौड़ की विजय से ही बादशाही अधिकार में चला गया था, केवल पश्चिमी पहाड़ी प्रदेश ही प्रताप के अधिकार में था, तो भी उसका कुलाभिमान, बादशाह के आगे दूसरे राजाओं के समान सिर न झुकाने का अटल व्रत, अनेक आपत्तियां सहकर भी अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने का प्रण और उसका वीरत्व, ये ही उसको उत्साहित करते रहे थे। उसके सरदार भी अपने स्वामी का अनुकरण कर युद्ध में प्राणोत्सर्ग करने को अपना क्षात्र-धर्म समझते थे। इसी से प्रतापसिंह ने ३००० सवारों के साथ ५००० शत्रुसेना को पहले ही आक्रमण में तितर बितर कर कोसों तक भगा दिया, परन्तु शाही सेना की चन्दावल में बादशाह के आने का शोर मचने से समयसूचकता का विचार कर पहाड़ों का सहारा न छोड़ने की इच्छा से वह हल्दीघाटी के पीछे ससैन्य लौट गया।

हिन्दुओं के साथ की मुसलमानों की लड़ाई का मुसलमानों का लिखा हुआ वर्णन एकपक्षीय होता है, तो भी मुसलमानों के कथन से ही निश्चित है कि शाही सेना की बुरी तरह दुर्दशा हुई और प्रतापसिंह के लौटते समय भी उस सेना की स्थिति ऐसी न रही कि वह उसका पीछा कर सके और उसका भय तो उस (सेना) पर यहां तक छा गया था कि वह यही स्वप्न देखती थी कि राणा पहाड़ के पीछे रहकर हमारे मारने की घात में लगा हुआ होगा। दूसरे दिन गोगून्दा पहुंचने पर भी शाही अफ़सरों को यही भय बना रहा कि राणा आकर हमारे पर टूट न पड़े। इसी से उस गांव की चौतरफ़ खाई खुदवाकर घोड़ा न फांद सके, इतनी ऊंची दीवार बनवाई और गांव के तमाम मोहल्लों में

(मानिनी) स्त्री अपने पति का परस्त्री-संसर्ग सहन नहीं करती। यदि इस बात को वह जान ले तो उससे रूठ जाती है या उसको छोड़कर चली जाती है।

आड़ खड़ी करवा दी गई। फिर भी शाही सेना गोगून्दे में क़ैदी की भांति सीमाबद्ध ही रही और अन्न तक न ला सकी, जिससे उसकी और भी दुर्दशा हुई। इन सब बातों पर विचार करते हुए यही मानना पड़ता है कि इस युद्ध में प्रतापसिंह की ही प्रबलता रही थी।

महाराणा ने लड़ाई के बाद अपने घायलों को कोल्यारी गांव में लेजाकर उनका इलाज करवाया। फिर अपने राजपूतों व भीलों की सहायता से उसने कुल पहाड़ी नाके और रास्ते रोक लिये, जिससे गोगूंदेवाली शाही सेना के लिये रसद आदि सामान का पहुंचना रुक गया और उसकी आपत्ति दिन दिन बढ़ती गई[1]।

बादशाह ता० ६ रजब हि० स० ९८४ (वि० सं० १६३३ आश्विन सुदि ७= ई० स० १५७६ ता० २९ सितम्बर) को ख़्वाजा (मुइनुद्दीन चिश्ती) के उर्स पर अजमेर आया और वहां से ६००००० रुपये और कुछ सामान मक्का और मदीना के योग्य पुरुषों को बांटने के लिये देकर सुल्तान ख़्वाजा को उधर रवाना किया। उसके साथ कुतुबुद्दीन मुहम्मदख़ां, कुलीज़ख़ां और आसफ़ख़ां को यह आज्ञा देकर भेजा कि वे गोगून्दे से ख़्वाजा का साथ छोड़ दें, राणा के मुल्क में सब जगह फिरें और जहां कहीं उसका पता लगे वहीं उसको मार डालें[2]।

मानसिंह को गोगूंदे में रहते हुए चार मास बीत गये थे, परन्तु उससे कुछ न बन पड़ा, जिससे बादशाह ने उसे तथा आसफ़ख़ां और काज़ीख़ां को वहां से चले आने की आज्ञा लिख भेजी और उनकी ग़लतियों[3]

शाही सेना का अजमेर लौट जाना

---

(१) वीर-विनोद; भाग २, पृ० १५५।

(२) मुन्तख़बुत्तवारीख़ का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० २४६।

(३) मानसिंह और आसफ़ख़ां की कौनसी ग़लतियों के कारण बादशाह ने उनकी ड्योढ़ी बन्द कर दी, यह अल्बदायूनी ने नहीं बतलाया, परन्तु इस विषय में तबकाते-अकबरी (तारीख़े निज़ामी) का कर्त्ता निज़ामुद्दीन अहमद बख़्शी लिखता है—'मानसिंह वापस चले आने की आज्ञा पाते ही दरबार में उपस्थित हुआ। जब सेना की दुर्दशा के सम्बन्ध में जांच की गई, तो पाया गया कि सैनिक बहुत बड़ी आपत्ति में थे तो भी कुंवर मानसिंह ने राणा कीका (प्रतापसिंह) के मुल्क को लूटने न दिया। इसी से बादशाह उसपर अप्रसन्न हुआ और कुछ समय के लिये उसको दरबार से निकाल दिया' (तबकाते अकबरी; इलियट्; जि० ५, पृ० ४००-४०१)। अबुल्फ़ज़ल लिखता है—'दूरदर्शिता के कारण शाही कर्मचारी राणा की खोज

के कारण मानसिंह तथा आसफ़ख़ां की ड्योढ़ी बंद कर दी[1]।

शाही सेना गोगूंदे में कैदियों की तरह पड़ी हुई थी। जब कभी थोड़े से आदमी रसद का सामान लेने के लिये जाते तो उनपर राजपूत धावा करते थे। इन आपत्तियों से शाही सेना घबराकर राजपूतों से लड़ती भिड़ती बादशाह के पास अजमेर चली गई और महाराणा बहुतसे बादशाही थानों के स्थान पर अपने थाने नियतकर कुंभलगढ़ चला गया[2]।

इस प्रकार बादशाह की महाराणा प्रतापसिंह पर की पहली चढ़ाई निष्फल हुई, जिससे बादशाह की क्रोधाग्नि और भी भड़क उठी।

शाही सेना के लौट जाने पर महाराणा ने अपना पक्ष सबल करने के लिये सिरोही के राव सुरताण, जालोर के स्वामी ताजख़ां और अपने श्वशुर ईडर के

महाराणा का गुजरात पर हमला करना

राजा नारायणदास को अपने पक्ष में मिला लिया। ये सब मिलकर अर्वली पहाड़ के दोनों तरफ़ लूट मार और फ़साद करने तथा गुजरात की तरफ़ के शाही थानों पर हमला करने लगे[3]। बादशाह ने यह समाचार सुनकर जालोर और सिरोही पर सैयद हाशिमख़ां, तरसूख़ां और रायसिंह को भेजा। जालोर और सिरोही दोनों के स्वामी बादशाह के अधीन हो गये। राणा का गुजरात पर का हमला रोकने के लिये बादशाह

में न गये और रसद पहुंचाने की कठिनता के कारण वे पहाड़ी प्रदेश से बाहर निकलकर चले आये। खुशामदी लोगों ने बादशाह को यह समझाया कि राणा को नष्ट करने में शाही कर्मचारियों ने शिथिलता की। इसपर बादशाह उनपर क्रुद्ध हुआ, परंतु पीछे से उसका क्रोध शांत हो गया' (अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० ३, पृ० २५९-६०)। हमारी सम्मति में कुंवर मानसिंह पर जो अपराध लगाया गया, उसका वह दोषी नहीं था, क्योंकि बदायूनी के कथनानुसार कुंवर एक एक अमीर की अध्यक्षता में सैनिकों को अन्न लाने के लिये बराबर भेजा करता था, परन्तु गोगून्दे के आसपास का प्रदेश विकट पहाड़ियोंवाला होने के कारण वहां लूट करने पर भी सेना के लिये पर्याप्त अन्न मिलने की संभावना ही न थी। जिन लोगों ने इस प्रदेश को देखा है वे ही वहां की ठीक ठीक स्थिति का अनुमान कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त वहां अन्न न पहुंचने का यह भी कारण था कि जहां कहीं शाही फ़ौज के आदमी अन्न लेने के लिये जाते वहीं उनपर राजपूत हमला करते थे। मेवाड़ के निकट के शाही इलाक़ों से भी अन्न नहीं आ सकता था, क्योंकि रास्ता राजपूतों और भीलों ने रोक रक्खा था।

(१) मुन्तख़बुत्तवारीख़ का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० २४७।

(२) वीर विनोद; भाग २, पृ० १५५।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा श्रीप्रतापसिंहजी का जीवन-चरित्र; पृ० २९।

ने तरसूखां को पाटन और सैयद हाशिम तथा रायसिंह को नाडोल की तरफ़ रक्खा[1], लेकिन इससे कुछ लाभ न हुआ।

महाराणा के दक्षिणी इलाक़ों में सिर उठाने का समाचार पाने पर अकबर ने शिकार का बहाना कर इस विचार से मेवाड़ में जाने का निश्चय किया कि जो

अकबर का गोगूंदे आना

काम बादशाह स्वयं कर सकता है वह नौकरों से नहीं हो सकता। वह ता० ३१ मिहर (वि० सं० १६३३ कार्तिक वदि ६=ई० स० १५७६ ता० १३ अक्टोबर) को अजमेर से गोगूंदे को रवाना हुआ। उसके वहां पहुंचने के पहले ही राणा पहाड़ों में चला गया। गोगूंदे से अकबर ने कुतुबुद्दीनखां, राजा भगवन्तदास (भगवानदास) और कुंवर मानसिंह को राणा के पीछे पहाड़ों में भेजा[2]। जहां जहां वे गये वहां महाराणा उनपर हमला करता ही रहा, जिससे अन्त में उनको पराजित होकर बादशाह के पास लौटना पड़ा। अबुल्फ़ज़ल उनके पराजय का हाल छिपाकर इतना ही लिखता है—"वे राणा के प्रदेश में गये, परन्तु उसका कुछ पता न लगने से विना आज्ञा ही लौट आये, जिसपर अकबर ने अप्रसन्न हो उनको ड्योढ़ी बन्द कर दी, जो माफ़ी मांगने पर फिर बहाल की गई[3]"। फिर बादशाह बांसवाड़े की तरफ़ चला गया। वह ६ मास तक राणा के मुल्क में या उसके निकट रहा, परन्तु राणा ने उसकी परवाह तक न की[4]।

बादशाह के मेवाड़ से चले जाने पर राणा भी पहाड़ों से उतरकर शाही थानों पर हमला करने लगा और मेवाड़ में होकर जानेवाले शाही लश्कर का आगरे का रास्ता बन्द कर दिया[5]। यह समाचार सुनकर बादशाह ने राजा भगवन्तदास (भगवानदास),

बादशाह का महाराणा पर फिर सेना भेजना

---

(१) अकबरनामे का एच. बेवरिजकृत अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० ३, पृ० २६६-६७।

(२) वही; जि० ३, पृ० २६८-६९।

(३) वही; जि० ३, पृ० २७४-७५।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा श्रीप्रतापसिंहजी का जीवन-चरित्र; पृ० २९।

(५) वही पृ० २९।

बदायूनी भी लिखता है कि मैं उस वक़्त बीमारी के कारण बसावर में रह गया था और बांसवाड़े के रास्ते से लश्कर में जाना चाहता था, परन्तु अब्दुल्लाखां ने वह रास्ता बंद

कुंवर मानसिंह, बैरामखां के पुत्र मिर्ज़ाखां (खानखाना), कासिमखां मीरबहर तथा अन्य अफ़सरों को राणा पर भेजा[1]।

इनसे महाराणा क़ाबू में न आ सका। ये उसको पकड़ने की बहुत कोशिश करते थे, परंतु कभी उसको पकड़ न सके। एक पहाड़ पर राणा का पड़ाव सुनकर उसे घेरते तो वह दूसरे पहाड़ से निकलकर उनपर छापा मारता था। इस दौड़धूप का यह फल हुआ कि उदयपुर और गोगूंदे से शाही थाने उठ गये और मोही का थानेदार मुजाहिदबेग मारा गया[2]। एक बार महाराणा के राजपूतों ने शाही सेना पर हमला किया, जिसमें मिर्ज़ाखां की औरतें कुंवर अमरसिंह के द्वारा पकड़ी गईं, जिनका महाराणा ने बहिन बेटी की तरह सम्मान कर प्रतिष्ठा के साथ पीछा उन्हें अपने पति के पास पहुंचा दिया। महाराणा के इस उत्तम बर्त्ताव के कारण वह (मिर्ज़ाखां) उस समय से ही मेवाड़ के महाराणाओं की तरफ़ सद्भाव रखने लगा[3]।

स्वतन्त्रता के प्रेमी महाराणा को नष्ट करने के लिये अकबर बारंबार भिन्न भिन्न सेनापतियों की अध्यक्षता में मेवाड़ पर तीन सैन्य भेज चुका था तथा एक

बादशाह का शाहबाजखां को मेवाड़ पर भेजना

बार स्वयं भी बड़ी सेना के साथ चढ़ आया था, परन्तु प्रत्येक बार असफलता ही हुई और शाही सेना को हारकर लौटना पड़ा। इस बार महाराणा को बिलकुल नष्ट करने के लिये एक बड़ी भारी सेना के साथ ता० १३ शाबान हि० स० ९८६ (वि० सं० १६३५ द्वितीय आश्विन सुदि पूर्णिमा=ई० स० १५७८ ता० १५ अक्टोबर) को बादशाह ने शाहबाज़खां मीरबख़्शी के साथ कुंवर मानसिंह, राजा भगवन्तदास (भगवानदास),

---

और कठिनतापूर्ण बताकर मुझे लौटा दिया। फिर मैं सारंगपुर उज्जैन के रास्ते से दिवालपुर में जाकर बादशाह के पास उपस्थित हुआ (मुन्तख़बुत्तवारीख़; जि० २, पृ० २४०)।

(१) अबुल्फ़ज़ल; अकबरनामा (अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० ३, पृ० २७७।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा श्रीप्रतापसिंहजी का जीवन-चरित्र; पृ० ३१।

(३) *अमरेशः खानखानादाराणां हरणं व्यधात् ॥ ३२ ॥*

सुवासिनीवत् संतोष्य प्रेषयामास ताः पुनः ।.............॥ ३३ ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य सर्ग ४। मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा श्रीप्रतापसिंहजी का जीवन-चरित्र; पृ० ४०।

पायन्दाखां मुग़ल, सैयद कासिम, सैयद हाशिम, सैयद राजू, उलगअसद तुर्कमान, गाजीखां बदख़्शी, शरीफ़खां अतगह, मिर्ज़ाखां (खानखाना) और गजरा चौहान आदि को रवाना किया[1]। उसने इस सैन्य को भी काफ़ी न समझकर सरहद की रक्षा के लिये बादशाह से और सेना मांगी, जिसपर उसने शेख़ इब्राहीम फ़तहपुरी को कुछ सेना देकर उसके पास सहायतार्थ भेजा[2]। शाहबाजखां कुंभलगढ़ को विजय करने का विचारकर उधर बढ़ा और राजा भगवानदास तथा कुंवर मानसिंह को, इस विचार से कि वे राजपूत होने के कारण राणा से लड़ने में सुस्ती करेंगे, उसने बादशाह के पास भेज दिया। वह शरीफ़खां, गाजीखां आदि को साथ लेकर शीघ्र ही आगे बढ़ा और उसने केलवाड़ा (जो कुंभलगढ़ के नीचे समान भूमि पर बसा है) ले लिया[3]। फिर मुसलमान पहाड़ पर चढ़ने लगे। कुंभलगढ़ का क़िला चित्तौड़ के समान एक अलग पहाड़ी पर स्थित नहीं, किन्तु पहाड़ की विस्तृत श्रेणी के सब से ऊंचे स्थान पर बना हुआ है, जिससे उसपर घेरा डालना सहज नहीं है। राजपूत शाही फ़ौज पर पहाड़ों की घाटियों में हमला करने लगे। एक दिन उन्होंने रात के समय छापा मारा और शाही सेना के चार हाथी किले में लाकर महाराणा को नज़र किये। शाही सेना ने नाडोल व केलवाड़ा की तरफ़ से नाकाबन्दी करके क़िले के रास्तों को घेरना शुरू किया। तब महाराणा, यह सोचकर कि इससे अब यहां रसद का आना कठिन हो जायगा और घिरकर व्यर्थ प्राण देना होगा, राव अक्षयराज के पुत्र भाण को क़िलेदार नियत कर बहुत से सैन्य के साथ क़िले से निकल गया और राणपुर में जाकर ठहरा[4]। शाही सेना ने वहां रहे हुए राजपूतों पर आक्रमण किया और वे भी बड़ी वीरता से लड़े। क़िले में अकस्मात् एक बड़ी तोप के फट जाने से लड़ाई का सामान जल गया, जिसपर

(१) मुन्तख़बुत्तवारीख़ (डब्ल्यू. एच. लोए कृत अंग्रेज़ी अनुवाद जि० २, पृ० २७५)। अकबरनामा (बैवरीजकृत अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० ३, पृ० ३०७। मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा श्रीप्रतापसिंहजी का जीवन-चरित्र; पृ० ३२।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा श्रीप्रतापसिंहजी का जीवन-चरित्र; पृ० ३२।

(३) अकबरनामा (अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० ३, पृ० ३३९–४०।

(४) वीरविनोद; भाग २, पृ० २५७।

राजपूतों ने क़िले के किवाड़ खोल दिये और वे दिल खोलकर लड़ने लगे[1]। राव भाण सोनगरा व बहुत से नामी राजपूत क़िले के दरवाज़े व मन्दिरों पर लड़ते हुए काम आये[2]। शाहबाजख़ां ने २४ फरवरदीन (वि० सं० १६३५ वैशाख वदि १२=ई० स० १५७८ ता० ३ अप्रैल) को क़िले पर अधिकार कर लिया और गाजीख़ां बदख़्शी को क़िले में छोड़कर वह राणा के पीछे बांसवाड़े की तरफ़ रवाना हुआ। दूसरे दिन उसने दोपहर को गोगूंदे पर और आधी रात को उदयपुर पर अधिकार कर उसे लूटा[3]।

फिर वह महाराणा के पीछे पहाड़ों में फिरता रहा, परन्तु उसको जीत न सका। अन्त में उसने थककर पीछा करना छोड़ दिया और उसके एक डेरे को लूटकर, राव सुरजन (हाड़ा) के बेटे दूदा[4] को साथ ले पंजाब की ओर बादशाह के पास चला गया[5], जहां उसकी सिफ़ारिश से बादशाह ने दूदा का महाराणा की सेना में रहकर लड़ने का अपराध क्षमा किया[6]।

शाहबाजख़ां के मेवाड़ से लौट जाने पर महाराणा छप्पन की तरफ़ चला गया। वहां पर छप्पन के राठोड़ों ने सिर उठाया तो उसने चावंड के स्वामी लूणा

---

(१) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० ३, पृ० ३४०।

(२) वीर-विनोद; भाग २, पृ० १५७।

(३) अकबरनामा (अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० ३, पृ० ३४०।

(४) जब राव सुरजन हाड़ा ने बादशाही सेवा स्वीकार की, तब उसके पुत्र दूदा और भोज बादशाह के पास चले गये। दूदा वहां का बर्ताव और रंग ढंग देखकर बादशाही सेवा में रहने की अपेक्षा महाराणा की सेवा में रहना अधिक अच्छा समझकर महाराणा के पास चला आया था।

(५) महाराणा ने भामाशाह के भाई ताराचंद को कुछ सेना देकर मालवे में रामपुरे की ओर भेजा था, जिसको शाहबाजख़ां ने लौटते समय घेर लिया। ताराचंद वहां से लड़ता हुआ बसी के समीप पहुंचा, जहां घायल होकर घोड़े से गिर गया, परन्तु बसी का राव देवड़ा साईं-दास उसको उठाकर अपने क़िले में ले गया। जब शाहबाजख़ां दूसरी ओर चला गया तब महाराणा ने चावंड से कूच किया और मंदसोर आदि मालवे के शाही थानों को उठाता तथा दंड लेता हुआ वह वापस चावंड आ पहुंचा (वीर-विनोद; भाग २, पृ० १५८)।

(६) अकबरनामा (अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० ३, पृ० ३५५-५६। मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा श्रीप्रतापसिंहजी का जीवन-चरित्र; पृ० ३४-३५।

महाराणा की बादशाह के विरुद्ध कार्रवाई

राठोड़ को वहां से निकालकर वहां अपना निवासस्थान नियत किया और अपने महल तथा चामुंडा माता का छोटासा मंदिर भी बनवाया, जो अबतक विद्यमान हैं[1]।

इन्हीं दिनों भामाशाह ने मालवे पर चढ़ाई कर वहां से २५ लाख रुपये और २०००० अशर्फ़ियां दंड में लेकर चूलिया ग्राम में महाराणा को भेट कीं। तदनन्तर जब दिवेर के शाही थाने पर आक्रमण किया गया, उस वक्त भामाशाह भी दूसरे राजपूतों के साथ लड़ने को गया था। कुंवर अमरसिंह ने वहां के मुग़ल थानेदार सुल्तानख़ां पर अपने बर्छे से ऐसा वार किया कि वह उसकी छाती को पार कर गया और वह मर गया[2]। थाने के दूसरे आदमी भी मारे गये और दिवेर की नाल पर महाराणा का क़ब्ज़ा हो गया। वहां से महाराणा कुंभलगढ़ की ओर चला, जिससे थोड़ी सी शाही फ़ौज, जो वहां पर थी, क़िले को छोड़कर भय के मारे भाग गई और कुंभलगढ़ पर उसने पीछा अधिकार कर लिया[3]।

फिर बादशाह ने मिर्ज़ाख़ां (ख़ानख़ाना) को फ़ौज देकर मालवे की ओर भेजा, जिससे भामाशाह जाकर मिला। मिर्ज़ाख़ां ने महाराणा को बादशाही सेवा में ले जाने का बहुत यत्न किया, लेकिन भामाशाह ने उसे स्वीकार न किया[4]।

कुछ दिनों बाद महाराणा ने बांसवाड़े और डूंगरपुरवालों को, जो बादशाही सेवा स्वीकार कर चुके थे, अपने अधीन करने के लिये रावत भाण (सारंगदेवोत) को फ़ौज देकर उनपर भेजा। सोम नदी पर लड़ाई हुई, जिसमें रावत भाण बहुत घायल हुआ और उसका काका रणसिंह मारा गया। चौहान हारकर भाग गये और डूंगरपुर तथा बांसवाड़ावालों ने महाराणा की अधीनता स्वीकार कर ली[5]।

शाहबाज़ख़ां के पंजाब चले जाने पर महाराणा फिर पहाड़ों से निकलकर अपने प्रदेश पर अधिकार करने के लिये बांसवाड़े की तरफ़ से छप्पन के पहाड़ों

(१) वीर-विनोद; भाग २, पृ० १५८-५६।

(२) वही; भाग २, पृ० १५७-५८।

(३) वही; भाग २, पृ० १५८।

(४) वही; भाग २, पृ० १५६।

(५) वही; भाग २, पृ० १५६; और ख्यात।

शाहबाज़खां का दूसरी बार मेवाड़ पर आना

में आया और शाही थानों पर हमला करना शुरू किया। बादशाह ने यह खबर सुनकर ता० ४ दे[1] (वि० सं० १६३५ पौष वदि १=ई० स० १५७८ ता० १५ दिसम्बर) को शाहबाज़खां को गाज़ीखां, मुहम्मद हुसेन, शेख़ तीमूर बदख़्शी और मीरज़ादा अलीखां के साथ राणा को अधीन करने के लिये पंजाब से अजमेर भेजा और यह कहा कि यदि तुम उसको दमन किये विना लौट आये तो तुम्हारे सिर उड़ा दिये जायेंगे। इस सेना के साथ बड़ा खजाना भी भेजा गया[2]।

शाहबाज़खां शीघ्र ही बड़ी भारी सेना के साथ मेवाड़ में आया तो महाराणा फिर पहाड़ों में चला गया। शाहबाज़खां दो तीन महीने तक तो मेवाड़ में फिरता रहा। फिर थानों में हर जगह कारगुज़ार आदमी रखकर वापस चला गया[3], क्योंकि उसको महाराणा की तलाश में दौड़धूप करने और लड़ते भिड़ते रहने के कारण कभी आराम नहीं मिलता था। शाहबाज़खां के इस बार लौट जाने पर महाराणा ने यह आज्ञा प्रचलित की कि पहाड़ी प्रदेश को छोड़कर समान भूमिवाले मेवाड़ के प्रदेश में कोई खेती न करे, जो कोई एक विस्वा ज़मीन पर भी खेती कर मुसलमानों को हासिल देगा उसका सिर उड़ा दिया जायगा। इस आज्ञा से मेवाड़ के उस प्रदेश के किसान लोग अपनी खेती का सामान तथा अपने बालबच्चों सहित अपने देश को छोड़कर दूसरे इलाक़ों में जा बसे। शाही फ़ौज के जितने थाने मेवाड़ में नियत थे, उनकी सेना के वास्ते खाने पीने का सामान अजमेर आदि शाही इलाक़ों से पूरे इन्तज़ाम के साथ आया करता था, तिसपर भी मेवाड़ी राजपूत मौक़ा पाकर शाही फ़ौज से छेड़छाड़ किये विना नहीं रहते थे। ऊंटाले के शाही थानेदार की आज्ञा से एक किसान[4] ने अपने

---

(१) 'दे' इलाही सन् के दसवें महीने का नाम है।

(२) अकबरनामा (अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० ३, पृ० ३८०-८१।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा श्रीप्रतापसिंहजी का जीवन-चरित्र; पृ० ३९। शाहबाज़खां ने जाते समय कहां कहां थाने नियत किये इस विषय में अबुल्फ़ज़ल या मुंशी देवीप्रसाद ने कुछ भी नहीं लिखा है, परंतु वीर-विनोद से पाया जाता है कि उसने ऊंटाला, मोही, मदारिया, चित्तौड़, मांडल, मांडलगढ़, जहाज़पुर और मन्दसोर में बड़े मज़बूत थाने नियत किये तथा हज़ारों आदमियों के लश्कर वहां रखकर वह बादशाही सेना में लौट गया (भाग २, पृ० १६६)।

(४) कर्नल टॉड ने इस घटना का एक गडेरिये के साथ होना लिखा है, जो अपनी भेड़ों को ऊंटाले के पास चरा रहा था (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३८८-८९)।

खेत में सब्ज़ी बोई, जिसकी ख़बर पाते ही महाराणा ने रात के समय शाही फ़ौज में पहुंचकर उस (किसान) का सिर काट डाला। फिर लड़ता भिड़ता वह पहाड़ों में पीछा चला गया, तब से उसके डर के मारे उस प्रदेश में खेती का होना बंद हो गया[1]।

कर्नल् टॉड का कथन है कि महाराणा ने अपने पूर्वजों की नीति के अनुसार अपनी प्रजा को पहाड़ी प्रदेश में चले जाने की आज्ञा दी। मुसलमानों के साथ की लड़ाइयों में समभूमिवाले प्रदेश के उजड़ जाने से अर्वली से लगाकर पूर्वी उच्च प्रदेश (पथार) तक का सारा देश, जिसमें बनास और बेड़च नदियां बहती हैं, बिना बत्ती के चिराग़ के समान हो गया। जहां अन्न की खेती होती थी वहां घास उग आई। मुख्य मुख्य रास्तों पर कटीले बबूल खड़े हो गये और बस्तियों में शिकारी जानवर बसने लगे। इस नीति से प्रताप ने राजपूताने के इस बगीचे को विजेताओं के लिये निरुपयोगी बना दिया, जिससे मुग़लों की राजधानी तथा यूरोप के बीच का व्यापार, जो सूरत के बन्दर द्वारा होता था और जिसका मार्ग मेवाड़ के मध्य में होकर निकलता था, बन्द हो गया, क्योंकि माल लुट जाने लगा[2]।

राजपूताने में यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि एक दिन बादशाह ने बीकानेर के राजा रायसिंह के छोटे भाई पृथ्वीराज से, जो एक अच्छा कवि था, कहा कि

महाराणा की दृढ़ता

राणा प्रताप अब हमें बादशाह कहने लग गया है और हमारी अधीनता स्वीकार करने पर उतारू हो गया है। इसपर उसने निवेदन किया कि यह ख़बर झूठी है। बादशाह ने कहा कि तुम सही ख़बर मंगवाकर अर्ज़ करो। तब पृथ्वीराज ने नीचे लिखे हुए दो दोहे बनाकर महाराणा के पास भेजे—

पातल जो पतसाह, बोलै मुख हूंतां बयण।
मिहर पछम दिस मांह, ऊगे कासप राव उत ॥ १ ॥
पटकूं मूंछां पाण, के पटकूं निज तन करद।
दीजे लिख दीवाण, इण दो महली बात इक[3] ॥ २ ॥

(१) वीर-विनोद; भाग २, पृ० १५९।
(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३८८-८९।
(३) मलसीसर ठाकुर भूरसिंह शेखावत; महाराणायशप्रकाश; पृ० ८७।

आशय—महाराणा प्रतापसिंह यदि अकबर को अपने मुख से बादशाह कहें तो कश्यप का पुत्र (सूर्य) पश्चिम में उग जावे अर्थात् जैसे सूर्य का पश्चिम में उदय होना सर्वथा असंभव है वैसे ही आप (महाराणा) के मुख से बादशाह शब्द का निकलना भी असंभव है ॥ १ ॥ हे दीवाण (महाराणा) ! मैं अपनी मूंछों पर ताव दूं अथवा अपनी तलवार का अपने ही शरीर पर प्रहार करूं, इन दो में से एक बात लिख दीजिये ॥ २ ॥

इन दोहों का उत्तर महाराणा ने इस प्रकार दिया—

तुरक कहासी मुख पतौ, इण तन सूं इकलिंग ।
ऊगै जांही ऊगसी, प्राची बीच पतंग ॥ १ ॥
खुसी हूंत पीथल कमध, पटको मूंछां पाण ।
पछटण है जेतै पतौ, कलमाँ सिर केवाण ॥ २ ॥
सांग मूंड सहसी सको, समजस जहर सवाद ।
भड़ पीथल जीतो भलां, बैण तुरक सूं बाद[1] ॥ ३ ॥

आशय—(भगवान) 'एकलिंगजी' इस शरीर से (प्रतापसिंह के मुख से) तो बादशाह को तुर्क ही कहलावेंगे और सूर्य का उदय जहां होता है वहां ही पूर्व दिशा में होता रहेगा ॥ १ ॥ हे वीर राठोड़ पृथ्वीराज ! जबतक प्रतापसिंह की तलवार यवनों के सिर पर है तब तक आप अपनी मूछों पर खुशी से ताव देते रहिये ॥ २ ॥ (राणा प्रतापसिंह) सिर पर सांग का प्रहार सहेगा, क्योंकि अपने बराबरवाले का यश ज़हर के समान कटु होता है। हे वीर पृथ्वीराज ! तुर्क (बादशाह) के साथ के वचनरूपी विवाद में आप भलीभांति विजयी हों ॥ ३ ॥

यह उत्तर पाकर पृथ्वीराज बहुत ही प्रसन्न हुआ और महाराणा की प्रशंसा में उसका उत्साह बढ़ाने के लिये उसने नीचे लिखा हुआ गीत लिख भेजा—

नर जेथ निमाणा निलजी नारी,
अकबर गाहक वट अवट ॥

---

(१) भूरसिंह शेखावत; महाराणायशप्रकाश; पृ० ८८ ।
ऊपर लिखे हुए पांचों दोहे राजपूताने में बहुत प्रसिद्ध होने के कारण अनेक राजपूतों के मुख से सुनने में आते हैं ।

चोहटै तिण जायर चीतोड़ो,
बेचै किम रजपूत बट ॥ १ ॥
रोजायतां तणै नवरोजै,
जेथ मसाणा जणो जण ॥
हींदू नाथ दिलीचे हाटे,
पतो न खरचै खत्रीपण ॥ २ ॥
परपंच लाज दीठ नह व्यापण,
खोटो लाभ अलाभ खरो ॥
रज बेचवां न आवै राणो,
हाटे मीर हमीर हरो ॥ ३ ॥
पेखे आपतणा पुरसोतम,
रह अणियाल तणै बळ राण ॥
खत्र बेचिया अनेक खत्रियां,
खत्रवट थिर राखी खुम्माण ॥ ४ ॥
जासी हाट बात रहसी जग,
अकबर ठग जासी एकार ॥
है राख्यो खत्री ध्रम राणै,
सारा ले बरतो संसार[1] ॥ ५ ॥

आशय—जहां पर मानहीन पुरुष और निर्लज्ज स्त्रियां हैं और जैसा चाहिये वैसा ग्राहक अकबर है, उस बाज़ार में जाकर चित्तौड़ का स्वामी (प्रतापसिंह) रजपूती को कैसे बचेगा? ॥ १ ॥ मुसलमानों के नौरोज़[2] में प्रत्येक व्यक्ति लुट

---

(१) भूरसिंह शेखावत; महाराणायशप्रकाश; पृ० ६४–६५।

(२) नौरोज़ का उत्सव ईरानी प्रथा के अनुसार प्रत्येक नये (सौर) वर्ष के प्रारंभ के दिन (ता० १ फ़रवरदीन) से १९ दिन तक मनाया जाता था। यह उत्सव अकबर ने ही अपने राज्य में प्रचलित किया था। दीवाने आम में एक ६० क़दम लम्बा और ४० क़दम चौड़ा शामियाना खड़ा किया जाता था, जिसके दरवाज़े आदि सोने और चांदी के ज़रदोज़ी वस्त्रों, सुनहरी कलशों, मोतियों की मालाओं, पुर्तगाली बनातों, रूमी मख़मलों, ज़री के कामवाले बनारसी वस्त्रों और कमख़ाबों से सजाये जाते थे। काश्मीरी शालें लटकाई जाती थीं। फ़र्श पर

गया, परन्तु हिन्दुओं का पति प्रतापसिंह दिल्ली के उस बाज़ार में अपने क्षत्रियपन को नहीं बेचता ॥ २ ॥ हम्मीर का वंशधर (राणा प्रतापसिंह) प्रपञ्ची अकबर की लज्जाजनक दृष्टि को अपने ऊपर नहीं पड़ने देता और पराधीनता के सुख के लाभ को बुरा तथा अलाभ को अच्छा समझकर बादशाही दुकान पर रजपूती बेचने के लिये कदापि नहीं आता ॥ ३ ॥ अपने पुरुखाओं के उत्तम कर्त्तव्य देखते हुए आप (महाराणा) ने भाले के बल से क्षत्रिय धर्म को अचल रक्खा,

---

ईरान और तुर्किस्तान की क़ालीनें बिछाई जाती थीं। यूरोप और चीन के रंगबिरंगे परदे लटकाये जाते थे। भीतर सुन्दर सुन्दर और अद्भुत चित्र, विलक्षण दर्पण, शीशे और बिल्लौर के कमल, कन्दीलें, झाड़, फ़ानूस, कुमकुमे (रंगबिरंगे कांच के छोटे बड़े गोले) लटकाये जाते थे। शामियाने के आस पास आसमानी ख़ेमे भी ताने जाते थे। शाही शामियाने के चारों ओर ४ एकड़ के घेरे में अमीर उमरा अपने अपने डेरों को बड़ी शानोशौकत व ठाठबाट से सजाते थे। ख़ानख़ाना व ख़ानआज़म के डेरों में भारत तथा विदेशों के अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र आदि का संग्रह रहता था। घड़ियां और घण्टे बजते थे, ज्योतिष-सम्बन्धी यन्त्र, गोल आकाशस्थ सितारों आदि के नक़शे और उनकी प्रत्यक्ष मूर्त्तियों में ग्रह और भिन्न भिन्न सौर जगत् चक्कर मारते थे। भार उठानेवाली कलें अपना काम करती थीं। तरह तरह के बाजे बजते थे। शाही मंडप में सोने और चांदी के कामवाली रत्नजटित गद्देवाली कुर्सियां रखी जाती थीं। बादशाह स्नान कर राजपूती ढंग की खिड़कीदार पगड़ी बांधकर चलता और ब्राह्मणों से टीका लगवाकर अपनी कुर्सी पर जा बैठता था। इन दिनों वह हरएक अमीर के डेरे में दर्शन देने जाता और अमीर अपनी अपनी शक्ति के अनुसार उसे भेट देते, जिसके बदले में वह उन्हें पदवी और जागीरें देता था। वह उस दिन तुलादान भी करता था। इस उत्सव में मीनाबाज़ार भी लगाया जाता था, जहां सब अमीर उमरावों की स्त्रियां आकर दुकानें लगाती थीं और सौदा भी प्रायः ज़नाना रक्खा जाता था। उसमें सभी प्रकार के सामान रेशम, रूमाल, टोपियां, मुर्ग़ी, अण्डे, घोड़े, क़ालीन, मेवे, अनाज, भूसा, बढ़ई और लोहारी के काम, तेल और मिट्टी के बरतन आदि बिकने के लिये आते थे। सब दुकानों पर स्त्रियां ही बैठती थीं। ख़्वाजासरा (हीजड़े बनाये हुए पुरुष), कलमाकनियां (पहरा देनेवाली स्त्रियां, जो विवाह नहीं कर सकती थीं) और उर्दूबेगनियां (बाज़ार से ख़रीदी हुई स्त्रियां, जो लड़ाई के वक़्त अमीरों के लिये बेगमों का काम देती थीं) अस्त्र-शस्त्र धारणकर प्रबंध के लिये घोड़े दौड़ाती थीं। पहरेदार भी स्त्रियां ही होती थीं। मालियों के स्थान पर मालिनें ही बाग़ सजाती थीं। बादशाह तथा उसकी बेगमें इस बाज़ार में सामान ख़रीदने के लिये आती थीं। बेगमें, बहिनें और कन्यायें बादशाह के पास बैठती थीं। अमीरों की स्त्रियां आकर सलाम करतीं, नज़रें देतीं और अपने बच्चों को उसके सामने उपस्थित करती थीं। इसके साथ ही दिन रात नाच गान होता रहता था (अकबरी दरबार; भाग १, पृ० २८६-८८। बेणीप्रसाद; हिस्ट्री ऑफ़ जहांगीर; पृ० ८७-८८)।

जब कि अन्य क्षत्रियों ने अपने क्षत्रियत्व को बेच डाला ॥ ४ ॥ अकबररूपी ठग भी एक दिन इस संसार से चला जायगा और उसकी यह हाट भी उठ जायगी, परंतु संसार में यह बात अमर रह जायगी कि क्षत्रियों के धर्म में रहकर उस धर्म को केवल राणा प्रतापसिंह ने ही निभाया। अब पृथ्वी भर में सबको उचित है कि उस क्षत्रियत्व को अपने बर्ताव में लावें अर्थात् राणा प्रतापसिंह की भांति आपत्ति भोग कर भी पुरुषार्थ से धर्म की रक्षा करें ॥ ५ ॥

महाराणा की पहाड़ों में स्थिति

कर्नेल टॉड ने पहाड़ों में रहते समय की महाराणा प्रतापसिंह की आपत्तियों का वर्णन करते हुए लिखा है—"कुछ ऐसे अवसर आये कि अपनी अपेक्षा भी अधिक प्रिय व्यक्तियों की ज़रूरतों ने उसे कुछ विचलित कर दिया। उसकी महाराणी पहाड़ों की चट्टानों या गुफ़ाओं में भी सुरक्षित नहीं थी और ऐश आराम में पलने के योग्य उसके बच्चे भोजन के लिये उसके चारों तरफ़ रोते रहते थे, क्योंकि अत्याचारी मुग़ल उनका इतना पीछा करते थे कि राणा को बना बनाया भोजन पांचवार छोड़ना पड़ा। एक समय उसकी राणी तथा कुंवर (अमरसिंह) की स्त्री ने जंगली अन्न के आटे की रोटियां बनाईं और प्रत्येक के भाग में एक एक रोटी आई। आधी रोटी उस समय के लिये और आधी दूसरे समय के लिये। प्रताप उस समय अपने दुर्भाग्य पर विचार करने में डूबा हुआ था कि उसकी लड़की के हृदय-वेधी चीत्कार ने उसे चौंका दिया। बात यह हुई कि एक जंगली बिल्ली लड़की की रक्खी हुई रोटी उठा ले गई, जिससे मारे भूख के वह चिल्लाने लगी। उस समय प्रतापसिंह का धैर्य विचलित हो गया। अपने पुत्रों और सम्बन्धियों को प्रसन्नतापूर्वक रणक्षेत्र में अपने साथ रहते हुए देखकर वह यही कहा करता था कि राजपूतों का जन्म इसलिये ही होता है, परन्तु भोजन के लिये अपने बच्चों की चिल्लाहट के कारण उसकी दृढ़ता स्थिर न रह सकी। ऐसी स्थिति में राज्य करना उसने शाप के तुल्य समझा और अकबर को अपनी कठिनाइयां कम करने के लिये लिखा"[1]।

यह सम्पूर्ण कथन अतिशयोक्तिपूर्ण कपोलकल्पना मात्र है, क्योंकि महाराणा को कभी ऐसी कोई आपत्ति सहनी नहीं पड़ी थी। उत्तर में कुंभलगढ़ से लगाकर दक्षिण में ऋषभदेव से परे तक अनुमान ६० मील लम्बा और पूर्व में

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३९८।

देबारी से लगाकर पश्चिम में सिरोही की सीमा तक क़रीब ७० मील चौड़ा पहाड़ी प्रदेश, जो एक के पीछे एक पर्वतश्रेणियों से भरा हुआ है, महाराणा के अधिकार में था। महाराणा तथा सरदारों के ज़नाने एवं बालबच्चे आदि इसी सुरक्षित प्रदेश में रहते थे। आवश्यकता पड़ने पर उनके लिये अन्न आदि लाने को गोड़वाड़, सिरोही, ईडर और मालवे की तरफ़ के मार्ग खुले हुए थे। उक्त पहाड़ी प्रदेश में जल तथा फलवाले वृक्षों की बहुतायत होने के अतिरिक्त बीच बीच में कई जगह समान भूमि आ गई है और वहां सैकड़ों गांव आबाद हैं। ऐसे ही वहां कई पहाड़ी क़िले तथा गढ़ भी बने हुए हैं और पहाड़ियों पर हजारों भील बसते हैं। वहां मक्का, चने, चावल आदि अन्न अधिकता से उत्पन्न होते हैं और गायें, भैंसें आदि जानवरों की बहुतायत के कारण घी, दूध आदि पदार्थ आसानी से पर्याप्त मिल सकते हैं। ऐसे ही छप्पन, तथा बानसी से लगाकर धर्यावद के परे तक का सारा पहाड़ी प्रदेश भी उस(महाराणा)के अधिकार में था। शाही सेना से केवल मेवाड़ का उत्तर पूर्वी प्रदेश ही घिरा हुआ था। इतने बड़े पहाड़ी प्रदेश को घेरने के लिये लाखों की संख्या में सेना चाहिये। ऐसे देश का सहारा होने से ही महाराणा अपनी स्वतन्त्रता को स्थिर रख सका और मुसलमानों की ऊपर लिखी हुई चढ़ाइयां निष्फल ही हुईं। वह अपने सरदारों सहित विस्तृत पहाड़ी प्रदेश में निडर रहता था और उसके स्वामिभक्त एवं वीर प्रकृति के हज़ारों भील लोग, जो बन्दरों की तरह पहाड़ लांघने में कुशल होते हैं, शत्रु-सैन्य के हलचल की ४०-५० मील दूर तक की ख़बरों को ७—८ घंटों में उसके पास पहुंचा देते थे, जिससे वह शत्रु पर कहां हमला करना ठीक होगा, यह सोचकर अपने राजपूतों सहित पहाड़ों की ओट में घात लगाये रहा करता और मौक़ा पाते ही उसपर टूट पड़ता था। इसी से अकबर की सेना ने पहाड़ों में दूर तक प्रवेश करने का एक बार भी साहस न किया। भील लोग महाराणा की भिन्न भिन्न प्रकार की सेवा करने के अतिरिक्त मौक़ा पड़ने पर शाही सेना की रसद को भी लूट लिया करते और महाराणा तथा सरदारों के ज़नानों की रक्षा भी किया करते थे। इसी से शाहबाज़ख़ां एक बार भी अधिक दिन तक मेवाड़ में न टिक सका और ख़ास ख़ास जगह बड़ी सेना के साथ थाने बिठाकर लौट गया। महाराणा इन थानों पर बराबर हमला कर उनको उठाता रहा। कर्नल् टॉड ने महाराणा की आपत्ति का जैसा चित्र खींचा है

वैसा ही हुआ होता, तो अबुल्फ़ज़ल जैसा लेखक, जो पग पग पर बादशाह की खुशामद किया करता है और ज़रा ज़रासी बात को बढ़ा बढ़ा कर लिखता है, इस बात को राई का पर्वत बनाकर न मालूम कितना ही लिख मारता, परंतु उसके अकबरनामे तथा अन्य फ़ारसी तवारीख़ों में आपत्तियों के मारे महाराणा के अधीनता स्वीकार करने के लिये अकबर को पत्र लिखने का उल्लेख कहीं नहीं है। अलबत्ता यह बात निश्चित है कि उदयपुर या गोगूंदे के राजमहलों में रहने का सा आराम वहां नहीं था और शत्रु से लड़ने की चिंता सदा लगी ही रहती थी। ऐसी भी प्रसिद्धि है कि एक दिन कुंवर अमरसिंह की स्त्री ने अपने पति से पूछा कि इन आपत्तियों का अंत कब होगा। इसपर उसने कहा कि न जाने कब होगा। महाराणा ने एक बड़े बादशाह से बैर बांधा है और अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये राजमहलों के सुख को छोड़कर पहाड़ों में रहने की ही प्रतिज्ञा[1] की है। जब यह बात महाराणा के कानों तक पहुंची तब उसने अपने

---

(१) कर्नल टॉड ने लिखा है—"चित्तौड़ छूट जाने के कारण राणा प्रताप ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक चित्तौड़ पीछा प्राप्त न होगा तब तक मैं और मेरे वंशज सोने चांदी के पात्रों को छोड़कर पत्तल पर भोजन करेंगे, घास के बिस्तर पर सोयेंगे, दाढ़ी बढ़ने देंगे और नक्कारा सैन्य के पीछे बजावेंगे। मेवाड़ की अवनति के चिह्न रूप अबतक नक्कारा सेना या सवारी में सबसे पीछे रहता है, दाढ़ी कटवाई नहीं जाती, प्रताप के वंशज सोने चांदी के थालों में भोजन करते हैं तो भी उनके नीचे पत्तल और बिस्तर के नीचे घास रखी जाती है" (टॉ; रा; जि० १, पृ० ३८७)।

ये सब बातें कल्पित हैं। उदयपुर के महाराणाओं के भोजन की रीति तो यह है कि प्राचीन शैली के अनुसार फ़र्श को धोकर उसपर धुला हुआ शुद्ध श्वेत वस्त्र बिछाया जाता है, जिसपर बाजोट (छः पायोंवाली षट्कोण या चार पायोंवाली चतुष्कोण चौकी, जो अनुमान ६ इंच ऊंची होती है) रखा जाता है। उसपर पत्तल और पत्तल पर थाल रखा जाता है। यह पत्तल कर्नल् टॉड के कथनानुसार चित्तोड़ की उक्त प्रतिज्ञा के निमित्त नहीं, किन्तु प्राचीन भोजन शैली का चिह्नमात्र है। प्राचीन काल में भोजन पत्तलों पर ही होता था। इनके बिस्तर के नीचे घास कभी नहीं रखी जाती और नक्कारा तो महाराणा उदयसिंह से चित्तौड़ का क़िला छूटा, तब से ही सैन्य के पीछे रहने लगा और अब तक रहता है।

राजपूतों में पहले आजकल के जैसी ऊपर की तरफ़ मुड़ी हुई दाढ़ी रखने की रीति ही नहीं थी। राजपूताने के कई मन्दिरों में वि० सं० १४०० के आसपास तक की राजपूत राजाओं या सरदारों की कई खड़ी मूर्तियां मिली हैं, जिनके या तो दाढ़ी नहीं है और है तो नीचे की तरफ़ लटकती हुई और अन्त में चपटी, जैसी कि मिस्र में मिलनेवाली मूर्तियों के

सरदारों से कहा—'मुझे विश्वास है कि कुंवर अमरसिंह जो आराम चाहता है, मेरे पीछे अपनी स्वतन्त्रता के लिये लड़ना पसंद न कर तुर्कों की दी हुई खिलअत पहिन, उनके फ़र्मान अदब के साथ ग्रहणकर, उनकी तावेदारी स्वीकार करेगा और उनके दरबार में सिर झुकाकर हमारे बेदाग़ वंश को दाग़ लगावेगा'। इसपर अमरसिंह बहुत ही लज्जित हुआ, तो भी अपने पिता के सामने कुछ कह न सका परन्तु दिल में यह ठान ली कि मैं भी बादशाह के आगे कभी सिर न झुकाऊंगा[1]।

होती है। ऐसी दाढ़ीवाली दो मूर्त्तियां राजपूताना म्यूज़ियम (अजमेर) में सुरक्षित हैं, जिनमें से एक पर वि० सं० १३८६ का लेख है और दूसरी बिना लेख की। ये दाढ़ियां पंचकेश के चिह्न रूप हैं। ऊपर की तरफ़ मुड़ी हुई दाढ़ी रखने की रीति पहले राजपूतों में बिलकुल न थी। वि० सं० १५०० के आसपास और उसके पीछे बहुधा तमाम राजपूत गलमुच्छे ही रखते थे, जैसे कि नाथद्वारा आदि के वैष्णव मन्दिरों के सेवक लोग अबतक रखते हैं। मुसलमानों में नीचे की ओर बढ़ी हुई दाढ़ी रखने की रीति थी, जैसा कि बाबर और हुमायूं के चित्रों से पाया जाता है। अकबर ने दाढ़ी बिलकुल मुंडवा दी और वह गलमुच्छे भी नहीं रखवाता था। जहांगीर राजपूतों की तरह गलमुच्छे और शाहजहां गलमुच्छों के साथ खसखसी दाढ़ी रखता था। औरंगज़ेब के मुसलमान शैली की नीचे को बढ़ी हुई दाढ़ी थी। बहादुरशाह (प्रथम) के ख़सख़सी से कुछ बड़ी दाढ़ी थी। फ़र्रुख़सियर की दाढ़ी राजपूतों की वर्तमान दाढ़ी से कुछ मिलती हुई थी। पीछे से राजपूतों ने भी उसकी दाढ़ी का अनुकरण किया।

उदयपुर के महाराणाओं में पहले पहल महाराणा संग्रामसिंह दूसरे (वि० सं० १७६७) ने गलमुच्छों के साथ खसखसी से कुछ बड़ी दाढ़ी रखवाई। जगतसिंह (दूसरे) और प्रतापसिंह (दूसरे) ने उसका अनुकरण कर बिलकुल खसखसी दाढ़ी रखवाई। फिर अरिसिंह (दूसरे) से शंभूसिंह तक वर्तमान शैली की दाढ़ी रही। सज्जनसिंह ने पहले गलमुच्छे, फिर बहुत बड़ी दाढ़ी रखवाई और अंत में उसे कटवाकर छोटी रखवाई। वर्तमान महाराणा साहब को ऐसी (बड़ी) दाढ़ी का विशेष आग्रह है।

जोधपुर के महाराजा भीमसिंह ने (वि० सं० १८४६) पहले पहल एक प्रकार की दाढ़ी रखवाई। मानसिंह ने भी उसी का अनुकरण किया। तख़्तसिंह ने वर्तमान शैली की दाढ़ी रखवाना शुरू किया, जो जसवन्तसिंह तक रही।

जयपुर में महाराजा जगतसिंह (वि० सं० १८६०) ने सर्व प्रथम एक प्रकार की (ठोडी पर से कटी हुई) और रामसिंह तथा माधोसिंह ने वर्तमान शैली की दाढ़ी रखवाई।

राजपूतों की वर्तमान शैली की दाढ़ी कुछ परिवर्तन के साथ फ़र्रुख़सियर की दाढ़ी का अनुकरण मात्र है। महाराणा प्रतापसिंह ने कभी दाढ़ी नहीं रखी, जैसा कि उसके चित्रों से पाया जाता है।

(१) वीर-विनोद; भाग २, पृ० १६४।

बादशाह ने शाहबाज़ख़ां आदि को महाराणा पर दूसरी वार भेजते समय कहा था कि यदि तुम महाराणा को अधीन न करोगे तो तुम्हारे सिर उड़ा दिये जायेंगे। इसपर भी वह बादशाह की इस आज्ञा का पालन न कर सका जिससे वह उसपर अप्रसन्न रहने लगा। इसी से उसने उस(शाहबाज़ख़ां)की जगह दस्तमख़ां को अजमेर का सूबेदार नियत किया, परन्तु वह ४ मास में ही कछवाहों[1] के हाथ से मारा गया, जिससे उसकी जगह मिर्ज़ाख़ां (ख़ानख़ाना) नियत हुआ। जब महाराणा ने शेरपुरे के थाने पर हमला किया, तब मिर्ज़ाख़ां ने अपने पर किये हुए पहले के एहसान का स्मरण कर उससे छेड़छाड़ न की, जिससे वह (महाराणा) आगे बढ़ने लगा। बादशाह के फ़तहपुर पहुंचने पर मिर्ज़ाख़ां वि० सं० १६३८ माघ सुदि ६ (ई० स० १५८२ ता० २६ जनवरी) को दरबार में उपस्थित हुआ। उस समय बख़्शियों ने उस(मिर्ज़ाख़ां)को शाहबाज़ख़ां से ऊपर खड़ा किया, जिसको उस(शाहबाज़ख़ां)ने अपना अपमान समझा और वह आज्ञा भंग करने को उद्यत हुआ। इसपर बादशाह ने क्रुद्ध होकर उसे रायसल दरबारी के पहरे में रखवा दिया[2]।

शाहबाज़ख़ां पर बादशाह की नाराजगी

वि० सं० १६४० श्रावण शुक्ला १२ (ई० स० १५८३ ता० २१ जुलाई) को महाराणा प्रतापसिंह के कुंवर अमरसिंह के पुत्र कर्णसिंह का जन्म हुआ, जिसकी बड़ी खुशी मनाई गई।

कर्णसिंह का जन्म

फिर महाराणा अपना मुल्क पीछा लेने लगा, जिससे हर एक थाने पर लड़ाई शुरू हुई और रास्ते बंद हो गये[3]। इस बात की खबर मिलने पर बादशाह

---

(१) बलभद्र शेखावत का बेटा अचला और राजा भारमल के भतीजे मोहनदास, सूरदास और तिलोकसी पंजाब से बादशाह की आज्ञा के विना ही लूनी (?) चले गये और वहां बादशाह के विरुद्ध उपद्रव मचाने लगे, जिससे दस्तमख़ां उनपर भेजा गया, परन्तु वह उनके साथ की लड़ाई में घायल होकर शेरपुरे में मर गया (अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० ३, पृ० ४७८-७६)।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; प्र० च०; पृ० ३६-४०।

(३) वही; पृ० ४१।

जगन्नाथ कछवाहे का मेवाड़ पर आना

ने ता० २४ आज़र इलाही सन् २६ (वि० सं० १६४१ मार्गशीर्ष सुदि १४=ई० स० १५८४ ता० ६ दिसंबर) को जगन्नाथ कछवाहे को अच्छी तरह हिदायत कर बड़े सैन्य के साथ मेवाड़ पर भेजा और मिरज़ा जाफ़रबेग को बख़्शी बनाकर उसके साथ कर दिया[1]। जगन्नाथ ने जाकर मांडलगढ़, मोही और मदारिया आदि स्थानों पर शाही थाने नियत किये[2]। कुछ समय पीछे सैय्यद राजू को सैन्य-सहित मांडलगढ़ में छोड़कर वह राणा के निवासस्थान की तरफ़ चला, परंतु राणा ने दूसरी तरफ़ से निकलकर शाही अधिकार में आये हुए प्रदेश पर आक्रमण किया, जिसपर सैय्यद राजू राणा से लड़ने को बढ़ा, परंतु वह (राणा) चित्तौड़ की तरफ़ चला गया, जिससे सैय्यद भी अपने स्थान को लौट गया। इस समय यद्यपि शाही सेना की विजय न हुई तो भी उधर के लोगों को शान्ति मिल गई। जगन्नाथ भी राणा के निवासस्थान पर हमला कर सैय्यद राजू के पास लौट आया[3]।

जगन्नाथ क़रीब दो वर्ष मेवाड़ में भटकता रहा। एक समय वह महाराणा के बिल्कुल निकट पहुंच भी गया था, परंतु कुछ कर न सका। अन्त में निराश होकर वि० सं० १६४३ (ई० स० १५८६) में वह कश्मीर को चला गया[4]।

इस प्रकार बादशाह ने भिन्न भिन्न अफसरों की अध्यक्षता में महाराणा को अधीन करने या मार डालने के विचार से कई बार मेवाड़ पर सेनाएं भेजीं

महाराणा की विजय

और एक बार खुद भी चढ़ा, परंतु सफलता न हुई। फिर महाराणा के देहान्त तक अर्थात् ११ वर्ष तक कोई चढ़ाई नहीं हुई, क्योंकि बादशाह को पंजाब की तरफ लड़ाइयों में लगा रहना पड़ा था। महाराणा ने एक ही वर्ष अर्थात् वि० सं० १६४३ (ई० स० १५८६) में चित्तौड़गढ़ और मांडलगढ़ को छोड़कर सारे मेवाड़ को पीछा अपने अधीन कर लिया[5]। फिर उसने मानसिंह और जगन्नाथ कछवाहे की चढ़ाइयों का

---

(१) अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० ३, पृ० ६६१।

(२) वीर-विनोद; भाग २, पृ० १५६।

(३) अकबरनामा (अंग्रेज़ी); जि० ३, पृ० ६६१।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; प्र० च०; पृ० ४२।

(५) वही; पृ० ४४। वीर-विनोद; भाग २, पृ० १६४।

बदला लेने के लिये आंबेर के इलाक़े पर हमला कर उसके धनाढ्य नगर मालपुरे को लूटकर नष्ट भ्रष्ट कर दिया[1]। महाराणा की शेष आयु सुख से व्यतीत हुई। उसने अपने उजड़े हुए मुल्क को आबाद किया, उदयपुर नगर की, जो शत्रु की चढ़ाइयों से बसते बसते अधूरा रह गया था, आबादी बढ़ाई; अपने सरदारों की, जो लड़ाइयों के समय अपने साथ रहे थे, प्रतिष्ठा और पद में वृद्धि की तथा उनको बड़ी बड़ी जागीरें दीं[2]।

सगर का बादशाही सेवा में जाना

महाराणा ने कुंवर अमरसिंह की पुत्री का सम्बन्ध सिरोही के राव सुरताण के साथ करना चाहा तो सगर ने अर्ज किया कि अपना भाई जगमाल सुरताण के साथ की लड़ाई में मारा गया है और आप अपनी पोती का सम्बन्ध उससे करना चाहते हैं, यह दुःख की बात है। आपको तो उससे अपने भाई का वैर लेना चाहिये। महाराणा ने जगमाल के बादशाही सेवा स्वीकार करने के कारण सगर के कथन पर कुछ ध्यान न दिया, जिससे वह रुष्ट हो गया और उसने निवेदन किया कि मुझे मेवाड़ से चले जाने की आज्ञा दीजिये। इसपर महाराणा ने कहा कि यदि तुम दिल्ली चले जाओगे तो हमारे घराने की प्रतिष्ठा के कारण तुम्हें वहां आश्रय तो मिल ही जायगा, परंतु तुम्हारा मेवाड़ छोड़कर बाहर जाना तो तभी सार्थक समझा जायगा जब तुम अपने ही बाहुबल से नामवरी हासिल कर सको। यह सुनकर सगर चुपचाप वहां से चलकर मानसिंह कछवाहे के पास चला गया। उसने कहा कि यदि तुम अपना उदय चाहते हो तो बादशाही सेवा स्वीकार कर लो। उसके विना कुछ भी नहीं हो सकता। सगर के यह बात स्वीकार करलेने पर वह उसको बादशाह के पास ले गया। बादशाह ने उसका हाल सुनकर उससे कहा कि हम तुम्हारी इच्छा पूर्ण कर देंगे[3]। फिर उसने सगर को राणा की उपाधि देकर अपनी सेवा में रख लिया[4], क्योंकि अपनी अधीनता स्वीकार न करने के कारण वह महाराणा को बाग़ी समझता था।

---

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४०३। मुंशी देवीप्रसाद; प्र० च०; पृ० ४४।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; प्र० च०; पृ० ४४।

(३) वीर-विनोद; भाग २, पृ० २१६-२०।

(४) तुज़ुके जहांगीरी (अलेक्ज़ेण्डर राजर्स कृत अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० १, पृ० १६-१७।

महाराणा प्रतापसिंह के समय के नीचे लिखे हुए शिलालेख और दानपत्र[1] देखने में आये—

महाराणा के समय के शिलालेख आदि

१—वि० सं० १६३० ज्येष्ठ सुदि ५ सोमवार का शिलालेख। इसमें महाराणा प्रतापसिंह के किसी ब्राह्मण को भूमिदान करने का उल्लेख है[2]।

२—वि० सं० १६३४ मार्गशीर्ष वदि ३ का दानपत्र। इसका आशय यह है कि महाराजाधिराज महाराणा प्रतापसिंह ने ओडा गांव (मेवाड़ में) पुरोहित राम[3] भगवान काशी को पुण्यार्थ दिया। यह गांव पहले महाराणा उदयसिंह ने दान किया था, परन्तु गोगूंदे की लड़ाई के दिनों उसका ताम्रपत्र खो गया, जिससे यह नया कर दिया गया। इसकी आज्ञा भामाशाह के द्वारा पहुंची और पंचोली जेता ने इसे लिखा।

३—वि० सं० १६३६ फाल्गुन सुदि ५ का दानपत्र, जिसका आशय यह है—'महाराजाधिराज महाराणा प्रतापसिंह ने चारण कान्हा को मीरघेसर (मृगेश्वर)[4] गांव भामाशाह की उपस्थिति में दिया'[5]।

कर्नल टॉड ने लिखा है-"शत्रु के प्रवाह को रोकने में असमर्थ होने के कारण उस (प्रताप) ने अपने चरित्र के अनुकूल एक प्रस्ताव किया और तदनुसार

---

(१) ब्राह्मणों, चारणों, भाटों, साधुओं, मन्दिरों और मठों आदि को जो गांव आदि सदा के लिये पुण्यार्थ दिये जाते थे, उनकी सनद ताम्रपत्र पर खुदवाई जाती थी और किसी की सेवा पर प्रसन्न होकर जो गांव आदि दिये जाते थे, उनकी सनद (पट्टा) कागज़ पर लिखी जाती थी।

(२) यह शिलालेख उदयपुर के विक्टोरिया हॉल में सुरक्षित है।

(३) राम (सनाढ्य ब्राह्मण) कोठारिया के चौहानों का पुरोहित था। बणवीर के समय उदयसिंह को कुंभलगढ़ में गद्दी पर बिठलानेवाले सरदारों में अग्रणी कोठारिया का रावत खान था। उसपर पूर्ण विश्वास होने के कारण महाराणा ने अपने भरोसे के सेवक उसी से लिये थे, जिनमें पुरोहित राम भी था। उसी समय से राम के वंशज उदयपुर में रहने लगे।

(४) मृगेश्वर गांव जोधपुर राज्य के गोडवाड़ प्रदेश में है, जो पहले उदयपुर राज्य के अन्तर्गत था।

(५) यह ताम्रपत्र मुंशी देवीप्रसाद ने सरस्वती; भाग १८, संख्या २, पृ० ६५—६८ में इसके 'दस्तालपत्र' सहित प्रकाशित किया है (चारण लोग ताम्रपत्र के आशय को याद रखने के लिये उसका भावार्थ पद्यबद्ध कर लेते हैं, जिसे वे 'दस्तालपत्र' कहते हैं)।

महाराणा प्रताप की सम्पत्ति

मेवाड़ एवं रक्त से अपवित्र चित्तोड़ को छोड़कर सिसोदियों को सिन्धु के तट पर ले जाकर वहां की राजधानी सोगड़ी नगर में अपना लाल झण्डा स्थापित करने एवं अपने तथा अपने निर्दय शत्रु (अकबर) के बीच में रेगिस्तान छोड़ने का निश्चय किया। वह अपने कुटुम्बियों और मेवाड़ के दृढ़ और निर्भीक सरदारों आदि के साथ, जो अपमान की अपेक्षा स्वदेश-निर्वासन को अधिक पसन्द करते थे, अर्वली पर्वत से उतरकर रेगिस्तान की सीमा पर पहुंचा। इतने में एक ऐसी घटना हुई, जिससे उसको अपना विचार बदलकर अपने पूर्वजों की भूमि में ही रहना पड़ा। यद्यपि मेवाड़ की ख्यातों में असाधारण कठोरता के कामों का उल्लेख मिलता है तो भी वे अद्वितीय राजभक्ति के उदाहरणों से खाली नहीं हैं। प्रताप के मंत्री भामाशाह ने, जिसके पूर्वज बरसों तक उसी पद पर नियत रहे थे, इतनी सम्पत्ति राणा को भेट कर दी कि जिससे पच्चीस हज़ार सेना का १२ वर्ष तक निर्वाह हो सकता था। भामाशाह मेवाड़ के उद्धारक के नाम से प्रसिद्ध है"[१]।

इस कथन को हम बहुधा कल्पित कथा ही समझते हैं। भामाशाह और उसका पिता (भारमल) उदयपुर राज्य के सच्चे स्वामिभक्त सेवक अवश्य थे। भामाशाह राज्य के खज़ाने की सुव्यवस्था करता रहा, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु आधुनिक शोध के आधार पर यह बात सिद्ध होती है कि महाराणा प्रताप के पास अतुल सम्पत्ति विद्यमान थी और धन की कमी के कारण उसके स्वदेश को छोड़कर अन्यत्र जा बसने का विचार भी सर्वथा निर्मूल है।

प्रतापी महाराणा कुंभकर्ण और संग्रामसिंह ने दूर दूर तक विजय कर बड़ी समृद्धि सञ्चित की थी। चित्तोड़ पर महाराणा विक्रमादित्य के समय गुजरात के सुलतान बहादुरशाह की दो चढ़ाइयां हुईं और महाराणा उदयसिंह के समय बादशाह अकबर ने आक्रमण किया। बहादुरशाह की पहिली चढ़ाई के पूर्व ही राज्य की सारी संपत्ति चित्तोड़ से हटा ली गई थी, जिससे बहादुरशाह और अकबर में से एक को भी चित्तोड़ विजय करने पर कुछ भी द्रव्य न मिला। यदि कुछ भी हाथ लगता तो अबुल्फ़ज़ल जैसा खुशामदी लेखक तो राई का पहाड़ बनाकर उसका बहुत कुछ

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४०२-३।

वर्णन अवश्य करता, परन्तु फ़ारसी तवारीख़ों में कहीं भी उसका उल्लेख न होना इस बात का प्रमाण है कि मेवाड़ की सञ्चित सम्पत्ति का कुछ भी अंश उनके हाथ न लगा और वह ज्यों की त्यों सुरक्षित रही।

चित्तोड़ छूटने के बाद महाराणा उदयसिंह को तो सम्पत्ति एकत्र करने का कभी अवसर ही नहीं मिला। उसके पीछे महाराणा प्रतापसिंह मेवाड़ के राज्य-सिंहासन पर बैठा, जो बहुधा उम्र भर मेवाड़ के विस्तृत पहाड़ी प्रदेश में रहकर अकबर से लड़ता रहा। प्रतापसिंह के पीछे उसका ज्येष्ठ कुंवर अमरसिंह मेवाड़ का स्वामी हुआ। वह भी लगातार अपने राज्य की स्वतन्त्रता के लिये अपने पिता प्रताप का अनुकरण कर अकबर और जहांगीर का मुक़ाबला करता रहा।

महाराणा प्रतापसिंह और अमरसिंह के समय मुसलमानों से लगातार लड़ाइयां होने के कारण चतुर मंत्री भामाशाह राज्य का ख़ज़ाना सुरक्षित स्थानों में गुप्त रूप से रखवाया करता था, जिसका ब्यौरा वह अपनी एक बही में रखता था। उन्हीं स्थानों से आवश्यकतानुसार द्रव्य निकालकर वह लड़ाई का ख़र्च चलाता था। अपने देहान्त से पूर्व उसने उपर्युक्त बही अपनी स्त्री को देकर कहा कि इसमें राज्य के ख़ज़ाने का ब्यौरेवार विवरण है, इसलिये इसको महाराणा के पास पहुंचा देना।

ऐसी दशा में यह कहना अनुचित न होगा कि चित्तोड़ का क़िला मुसलमानों के हस्तगत होने के पीछे तो मेवाड़ के राजाओं को सम्पत्ति एकत्र करने का अवसर ही नहीं मिला था। वि० सं० १६७१ (ई० स० १६१४) में महाराणा अमरसिंह ने बादशाह जहांगीर के साथ सन्धि की उस समय शाहज़ादा खुर्रम से मुलाकात करने पर एक लाल उसको नज़र किया, जिसके विषय में जहांगीर अपनी दिन-चर्या में लिखता है—"उसका मूल्य ६०००० रुपये और तौल आठ टांक था। वह पहले राठोड़ों के राजा राव मालदेव के पास था। उसके पुत्र चन्द्रसेन ने अपनी आपत्ति के समय उसे राणा उदयसिंह को बेच दिया था[1]"। वि० सं० १६७३ (ई० स० १६१६) में शाहज़ादा खुर्रम दक्षिण को जाता हुआ मार्ग में उदयपुर ठहरा। उस प्रसंग में बादशाह जहांगीर अपनी दिनचर्या में लिखता है—"राणा ने शाहज़ादे को ५ हाथी, २७ घोड़े और रत्नों तथा रत्नजटित ज़ेवरों से

(१) तुज़ुके जहांगीरी का राजर्स कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० १, पृ० २८९।

भरा एक थाल नज़र किया, परन्तु शाहज़ादे ने केवल तीन घोड़े लेकर बाक़ी सब चीज़ें वापस कर दीं[1]"। जहांगीर के इन कथनों से महाराणा अमरसिंह के समय की मेवाड़ की सम्पत्ति का कुछ अनुमान पाठक कर सकेंगे। यदि महाराणा प्रतापसिंह के पास कुछ भी सम्पत्ति न होती, तो उसका पुत्र महाराणा अमरसिंह सन्धि के समय ही इतने रत्नादि कहां से प्राप्त कर सकता?

अमरसिंह के पीछे उसका ज्येष्ठ पुत्र कर्णसिंह राजगद्दी पर बैठा, जिसका सारा समय अपने उजड़े हुए इलाक़ों को आबाद करने में लगा। तदनन्तर महाराणा जगतसिंह मेवाड़ का शासक हुआ, जो बड़ा ही उदार राजा था। उसने लाखों रुपये लगाकर उदयपुर में जगन्नाथराय (जगदीश) का मन्दिर बनवाया और उसकी प्रतिष्ठा में लाखों रुपये खर्च किये। उसने अनेक बहुमूल्य दान किये, जिनमें से 'कल्पवृक्ष' दान विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि कल्पवृक्ष का प्रत्येक अंग रत्नों से ही बनाया गया था। उसने सैकड़ों हाथी, हज़ारों घोड़े और बहुत से गांव दान किये[2]। प्रारंभ में वह प्रतिवर्ष अपनी जन्मगांठ के दिन चांदी की तुला करता था[3], परन्तु वि० सं० १७०५ (ई० स० १६४८) से प्रतिवर्ष उस अवसर पर सोने की तुला करने लगा[4]। उसकी दानशीलता बहुत ही प्रसिद्ध है। उसके पीछे उसका ज्येष्ठ कुंवर राजसिंह मेवाड़ के सिंहासन पर वि० सं० १७०९ (ई० स० १६५२) में बैठा। उसने उसी वर्ष के मार्गशीर्ष मास में एकलिङ्गजी जाकर वहां रत्नों का तुलादान किया[5]। समस्त भारतवर्ष में रत्नों के तुलादान का यही एक प्राचीन लिखित प्रमाण मिला है। उसने राजसमुद्र नाम का प्रसिद्ध तालाब बनवाया, जिसमें १०५०७५८४ रुपये व्यय हुए[6]।

ऊपर उद्धृत किये हुए प्रमाणों से पाठकों को उस समय की उदयपुर राज्य की समृद्धि का ठीक-ठीक अनुमान हो सकेगा। हम ऊपर बतला चुके हैं कि

(१) तुज़ुके जहांगीरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; जिल्द १, पृ० ३४५।

(२) जगन्नाथराय के मन्दिर की प्रशस्ति; श्लोक ११०–११।

(३) राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ५, श्लोक ३४।

(४) वही; सर्ग ५, श्लोक ३५–३६।

(५) उक्त तुलादान की प्रशस्ति; श्लोक १८। यह प्रशस्ति थोड़े ही वर्ष पूर्व मिली है और इस समय उदयपुर के विक्टोरिया हॉल में सुरक्षित है।

(६) राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग २१, श्लोक २२।

महाराणा उदयसिंह, प्रतापसिंह और अमरसिंह को तो सम्पत्ति सञ्चित करने का अवकाश ही नहीं मिला। महाराणा कर्णसिंह अपने उजड़े हुए राज्य को आबाद करने में ही लगा रहा। महाराणा जगतसिंह और राजसिंह को बाहर से कोई बड़ी सम्पत्ति नहीं मिली। अतएव यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि यह सारी सम्पत्ति कुंभा और सांगा की संग्रह की हुई थी और महाराणा प्रतापसिंह के समय ज्यों की त्यों विद्यमान थी। ऐसी दशा में यह मानना, कि प्रतापसिंह के पास अकबर के साथ की लड़ाइयों के समय सेना का खर्च चलाने के लिये कुछ भी द्रव्य न था, जिससे वह मेवाड़ छोड़कर सिन्ध में राज्य स्थापित करने जा रहा था, परन्तु मंत्री भामाशाह के अपनी सारी सम्पत्ति नज़र करने पर अपनी मातृभूमि को लौट आया, सर्वथा निर्मूल है। कर्नल टॉड का उपर्युक्त कथन सुनी सुनाई बातों के आधार पर लिखे जाने के कारण विश्वास के योग्य नहीं है। वस्तुतः महाराणा प्रताप बहुत सम्पत्तिशाली था और उसके पास धन की कोई कमी न थी। इसीसे वह तथा उसका पुत्र दोनों बरसों तक बादशाहों से लड़ने में समर्थ हुए थे।

महाराणा का स्वर्गवास

महाराणा चावंड के महलों में रहते समय बीमार पड़ा[1]। उन दिनों उसके स्वामिभक्त सरदार, जो उसकी आपत्ति के समय साथ रहे थे, उसके पास बैठे रहते थे। अंतिम दिन वह अत्यन्त दुःखी था और उसके प्राण शान्ति से पयान नहीं करते थे। उसकी ऐसी अवस्था देखकर सरदारों को दुःख हो रहा था, जिससे सलूंबर के रावत ने साहस कर पूछा—'क्या कारण है कि आपके प्राण शान्ति के साथ इस शरीर को नहीं छोड़ते'? उसने उत्तर दिया कि मैं अपने पुत्र अमरसिंह का स्वभाव जानता हूँ, वह कुछ आराम-पसन्द है, इसलिये मुझे उससे आशा नहीं कि वह आपत्ति

(१) महाराणा का देहान्त किस बीमारी से हुआ यह अनिश्चित है, तो भी ऐसी प्रसिद्धि है कि एक दिन शेर का शिकार करते समय उसने कमान बड़े ज़ोर से खैंची, जिससे अंग मोड़ते समय आँत में कुछ ख़राबी हो गई और उसी बीमारी से उसका देहांत हो गया।

ईश्वर की माया अपार है कि जो वीर मुसलमानों के साथ की अनेक लड़ाइयों में कभी घायल न हुआ और जो अपनी तलवार से अनेक वीरों को मृत्युशय्या पर सुलाता रहा, वही वीर कमान खींचने से बीमार होकर इस संसार से सदा के लिये विदा हो गया (शेखावत सूरसिंह; महाराणायशप्रकाश; पृ० १५२)।

महाराणा प्रतापसिंह की छत्री

सहकर देश और वंश के गौरव की रक्षा कर सके। यदि आप लोग मेरे पीछे मेरे राज्य के गौरव की रक्षा करने का प्रण करें तो मेरी आत्मा शान्ति के साथ इस शरीर को छोड़ सकती है। इसपर सरदारों ने बापा रावल की गद्दी की शपथ खाकर वैसी ही प्रतिज्ञा की, जिससे महाराणा को संतोष हो गया और उसका प्राणपक्षी शान्तिपूर्वक प्रयाण कर गया। यह घटना वि० सं० १६५३ माघ सुदि ११ (ई० स० १५९७ ता० १९ जनवरी) को हुई[1]।

चावंड से अनुमान डेढ़ मील पर बंडोली गांव के निकट बहनेवाले एक नाले के तट पर महाराणा का अग्नि-संस्कार हुआ, जहां उसके स्मारकरूप श्वेत पाषाण की आठ स्तंभवाली एक छोटी सी छत्री बनी हुई है, जो इस समय जीर्ण शीर्ण दशा में है।

जब महाराणा के स्वर्गवास का समाचार बादशाह अकबर के पास पहुंचा, तब वह उदास होकर स्तब्ध सा हो गया। उसकी यह दशा देखकर दरबारी लोगों को आश्चर्य हुआ कि राणा की मृत्यु से तो बादशाह को प्रसन्न होना चाहिये था न कि उदास। उस समय चारण दुरसा आढ़ा[2] ने, जो वहां उपस्थित था, नीचे लिखा हुआ छप्पय कहा-

---

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० १६४।

(२) आढ़ा गोत्र का चारण दुरसा वीर प्रकृति का पुरुष होने से वीर-रसवाली कविता लिखने के लिये राजपूताने में प्रसिद्ध है। वह मारवाड़ का रहनेवाला था और सिरोही के राव सुरताण के साथ की जोधपुरवाले रायसिंह (चन्द्रसेनोत) तथा सीसोदिया जगमाल की लड़ाई के समय राठोड़ रायसिंह की सेना में रहकर लड़ता हुआ सख्त घायल हुआ था। रण-खेत संभालते समय उसको बुरी तरह से घायल देखकर सुरताण के एक सरदार ने कहा कि इसको भी दूध पिलाना (मार डालना) चाहिये। इसपर दुरसा ने कहा—'मैं राजपूत नहीं, चारण हूं, राजपूतों को मुझे मारना उचित नहीं'। इसपर उससे कहा गया कि यदि तुम चारण हो तो इस समरा देवड़ा की प्रशंसा में, जो अभी मारा गया है, कोई दोहा कहो। इस पर उसने तत्काल यह दोहा कहा—

धर रावां जश डूंगरां, ग्रद पोतां शत्र हाण।
समरे मरण सुधारियो, चहु थोकां चहुआण॥

आशय—चौहान समरा ने चारों तरह से अपनी मृत्यु को सार्थक किया, अर्थात् राव (सुरताण) की भूमि की रक्षा की, पहाड़ों की तारीफ करवाई, अपने वंशजों के लिये सम्मान छोड़ गया और शत्रुओं को हानि पहुंचाई।

अस लेगो अणदाग, पाघ लेगो अणनामी ।
गौ आडा गवडाय, जिको बहतो धुर वामी ॥
नवरोजे नह गयो, न गौ आतसां नवल्ली ।
न गौ भरोखाँ हेठ, जेठ दुनियाण दहल्ली ॥
गहलोत राण जीती गयो, दसण मूंद रसणा डसी ।
नीसास मूक भरिया नयण, तो मृत शाह प्रतापसी ॥

आशय—हे गुहिलोत राणा प्रतापसिंह ! तेरी मृत्यु पर शाह (बादशाह) ने दांतों के बीच जीभ दबाई और निश्वास के साथ आंसू टपकाये, क्योंकि तूने अपने घोड़े को दाग़[1] नहीं लगने दिया, अपनी पगड़ी को किसी के आगे नहीं झुकाया[2], तू अपना आड़ा (यश) गवा गया, तू अपने राज्य के धुरे को बांये

यह दोहा सुनते ही राव सुरताण बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसको पालकी में बिठलाकर अपने साथ ले गया और उसके घावों का इलाज करवाया। फिर उसके आराम होने पर उसको अपना पोलपात (राजाओं तथा सरदारों के विवाह के समय पोल अर्थात् द्वार पर वर से नेग लेनेवाला मुख्य चारण) बनाया और उसको कई गांव जागीर में दिये। महाराणा प्रतापसिंह की वीरता की प्रशंसा में उसने बिरुदछिहत्तरी नाम का ७६ सोरठोंवाला एक काव्य बनाया, जिसके कई सोरठे राजपूतों, चारणों आदि के मुख से सुनने में आते हैं। उदाहरणार्थ उसके कुछ सोरठे आगे दिये जायेंगे।

(१) बादशाह अकबर ने घोड़ों की पीठ पर दाग़ लगाने की प्रथा वि० सं० १६३१ (ई० स० १५७४) से अपने राज्य में प्रचलित की थी, जिससे बादशाह की नौकरी करनेवाले तमाम राजाओं, अमीरों आदि के घोड़ों के इस अभिप्राय से दाग़ लगाया जाता था कि घोड़े को देखते ही यह ज्ञात हो जाय कि यह घोड़ा बादशाही सेवक का है। दाग़ की प्रथा सबसे पहले अलाउद्दीन ख़िलजी ने चलाई थी, परन्तु उसका प्रचार अधिक समय तक न रहा। उसके पीछे सूरवंशी शेरशाह ने उसका अनुकरण किया, परंतु वह ५ वर्ष राज्य कर मर गया, जिससे उसके पीछे वह न चली। फिर अकबर ने नियमित रूप से उसे जारी किया।

(२) महाराणा को आपत्ति सहना तो स्वीकार था, परंतु किसी हिन्दू या मुसलमान के आगे सिर झुकाना स्वीकार न था। एक समय उसने एक भाट को, उसकी कविता पर प्रसन्न होकर, इनाम के साथ अपने सिर की पगड़ी भी दे दी थी। वह भाट भी महाराणा की पगड़ी के इस सम्मान को भली भांति जानता था। एक बार जब वह बादशाह अकबर से मुजरा करने को गया तब उसने पगड़ी उतारकर हाथ में ले ली और नंगे सिर ही मुजरा किया। जब बादशाह ने ऐसा करने का कारण पूछा तो उसने निवेदन किया कि यह पगड़ी उस महाराणा

कंधे से चलाता रहा, नौरोज़ में न गया, न आतसों (बादशाही डेरों) में गया, कभी शाही झरोखे के नीचे खड़ा न रहा और तेरा रौब दुनियां पर ग़ालिब था, अतएव तू सब तरह से जीत गया।

यह सुनकर दरबारियों ने सोचा कि बादशाह इसपर अवश्य क्रुद्ध होगा, परंतु उसने तो उलटा उसे इनाम देकर कहा कि इस कवि ने ही मेरा ठीक भाव समझा है।

महाराणा की संतति

महाराणा प्रतापसिंह के ११ राणियों से १७ कुंवर अमरसिंह, भगवानदास, सहसा[1] (सहसमल), गोपाल, कचरा[2], सांवलदास, दुर्जनसिंह, कल्याणदास[3], चांदा[4] (चन्द्रसिंह), शेखा[5], पूरणमल[6] (पूरा), हाथी[7], रामसिंह[8], जसवन्तसिंह[9], माना, नाथा और रायभाण हुए[10]।

प्रतापसिंह की है, जिसने कभी भी किसी के आगे सिर नहीं झुकाया। इसलिये मैंने भी उसका अदब रखा (मुंशी देवीप्रसाद; प्र० च०; पृ० २८–२९)। राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ४, श्लोक ४६-५०।

(१) सहसा के वंश में धर्यावदवाले हैं।

(२) कचरा के वंश में ठिकाना जोलावास (गोगून्दा के अन्तर्गत) है।

(३) कल्याणदास के वंश में परसाद का ठिकाना है।

(४) चांदा के वंश में ठिकाना आंजणा (दरीबा के पास) है।

(५) शेखा के वंश में नाणा, बहेड़ा और बीजापुर (गोडवाड़ में) के सरदार हैं।

(६) पूरा के वंशज पूरावत कहलाते हैं। उसके वंश में ठिकाने मंगरोप, गुरलां, गाडरमाला तथा सींगोली हैं।

(७) हाथी के वंश में बोर्यास, दांतडा और गेंदल्या के स्वामी हैं।

(८) रामसिंह की संतति में उदल्यावास और मानकरी के ठिकाने हैं।

(९) जसवन्तसिंह के वंशज कारूंडा और जलोदा में हैं।

महाराणा उदयसिंह, प्रतापसिंह तथा उनके पीछे के मेवाड़ के महाराणाओं के वंशज सामान्यतः राणावत कहलाते हैं, तो भी महाराणा उदयसिंह के पुत्र शक्ता के वंशज शक्तावत और कान्ह के कान्हावत कहलाते हैं। कान्हावतों के मुख्य ठिकाने अमरगढ़ और आमलदा हैं।

(१०) मुहणोत नेणसी ने १५ पुत्रों का होना लिखा है, जिनमें नाथा, दुर्जनसिंह और रायभाण के नाम नहीं हैं और करमसी का नाम दिया है, जो उदयपुर के बड़वे की ख्यात में नहीं मिलता।

हिन्दूपति महाराणा प्रतापसिंह के अनेक आपत्तियां सहने पर भी बादशाह अकबर के आगे सिर न झुकाने का अटलव्रत, उसकी वीरता, कुलाभिमान और उसके वंश की बड़ी प्रतिष्ठा का बहुत कुछ वर्णन मुसलमानों, यूरोपियनों आदि की लिखी तवारीखों में मिलता है, इतना ही नहीं, किन्तु राजपूताना आदि के अनेक समकालीन कवियों से लगाकर अबतक के कवि उसके गौरव और हिन्दूधर्म की रक्षा आदि की प्रशंसा करते रहे हैं। उदाहरणार्थ कुछ अवतरण नीचे देते हैं—

महाराणा का यशवर्णन

आढ़ा दुरसाकृत सोरठे—

अकबर गरव न आण, हींदू सह चाकर हुवां ।
दीठो कोई दीवाण, करतो लटका कटहडै ॥

आशय—हे अकबर! सब हिन्दू (राजाओं) के तेरे चाकर हो जाने पर गर्व मत कर। क्या किसीने दीवाण (महाराणा) को शाही कटहरे के आगे झुक झुक कर सलाम करते हुए देखा है?

कदे न नामै कंध, अकबर ढिग आवै न ओ ।
सूरजवंस संबंध, पाळे राण प्रतापसी ॥

आशय—वह (महाराणा) न तो कभी अकबर के पास आता है और न सिर नमाता है। राणा प्रतापसिंह तो सूर्यवंश की मर्यादा का पालन करता है।

सुखहित स्याल समाज, हिंदू अकबर वस हुआ ।
रोसीलो मृगराज, पजै न राण प्रतापसी ॥

आशय—अपने सुख के निमित्त गीदड़ों के झुंड के समान हिन्दू अकबर के अधीन हो गये, परन्तु खिझे हुए सिंह जैसा राणा प्रतापसिंह उससे कभी नहीं दबता।

लोपै हिंदू ताज, सगपण रोपे तुरक सूं ।
आरजकुल री आज, पूंजी राण प्रतापसी ॥

आशय—हिन्दू (राजा) कुल की लज्जा को छोड़कर यवनों से सम्बन्ध जोड़ते हैं, अतएव अब तो आर्यकुल की सम्पत्ति राणा प्रतापसिंह ही है।

अकबर पथर अनेक, कै भूपत भेळा किया ।
हाथ न लागो हेक, पारस राण प्रतापसी ॥

आशय—अकबर ने कई एक पत्थररूपी राजाओं को अपने यहां एकत्र कर लिया है, परंतु पारसरूपी एक राणा प्रतापसिंह ही उसके हाथ नहीं लगा ।

अकबर समँद अथाह, तिंह डूबा हिंदू तुरक ।
मेवाड़ो तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी ॥

आशय—अकबर रूपी अथाह समुद्र (जलाशय) में हिन्दू और मुसलमान डूब गये, परंतु मेवाड़ का स्वामी प्रतापसिंह कमल के पुष्प[1] के समान उसके ऊपर ही शोभा दे रहा है ।

अकबरिये इक बार, दागल की सारी दुनी ।
अणदागल असवार, एकज राण प्रतापसी ॥

आशय—अकबर ने एक बार में ही सारी दुनियां के दाग़ लगा दिया है, परन्तु एक राणा प्रतापसिंह ही बिना दाग़वाले घोड़े पर सवार होता है ।

अकबर घोर अंधार, ऊँघाणा हिंदू अवर ।
जागै जगदातार, पोहरै राण प्रतापसी ॥

आशय—अकबर रूपी घोर अंधेरी रात में अन्य सब हिन्दू नींद में सो रहे हैं, परन्तु जगत् का दाता प्रतापसिंह जगता हुआ पहरे पर खड़ा है ।

गोहिल कुल धन गाढ, लेवण अकबर लालची ।
कोडी दै नह काढ, पणधर राण प्रतापसी ॥

आशय—गोहिल (गुहिलोत) वंशरूपी गहरी सम्पत्ति को लालची अकबर लेना चाहता है, परन्तु प्रणवीर राणा प्रतापसिंह एक कौड़ी भी लेने नहीं देता ।

जोधपुर के महाराजा मानसिंह-कृत सोरठा[2]—

गिर पुर देस गँमाड, भमिया पग पग भाखरां ।
मह अंजसै मेवाड़, सह अंजसै सीसोदिया ॥

---

(१) कवि कल्पना है कि कमल का पुष्प सदा जल के ऊपर ही रहता है, जल के बढ़ने के साथ उसकी डंडी भी बढ़ती जाती है, जिससे वह जल में नहीं डूबता ।

(२) यह सोरठा एक सरदार के महाराणा प्रतापसिंह की आपत्ति का वर्णन करने पर महाराजा ने कहा था ।

आशय—(महाराणा प्रतापसिंह) अपने पर्वत, नगर, और देश को खोकर पहाड़ों में जगह जगह फिरा, इसी से आज मेवाड़ देश और सीसोदिया कुल गर्व करता है।

बीकानेर के राठोड़ पृथ्वीराज-कृत दोहा—

माई एहा पूत जण, जेहा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओधकै, जांण सिराणै सांप॥

आशय—हे माता! ऐसे पुत्र को जन्म दे जैसा कि राणा प्रतापसिंह है, जिसको सिरहाने के पास रहा हुआ सांप जानकर अकबर चौंक उठता है।

धर बांकी दिन पाधरा, मरद न मूकै माण।
घणां नरिंदां घेरियो, रहै गिरंदां राण॥

आशय—जिसकी भूमि अत्यन्त विकट (पहाड़ोंवाली) है, जिसके दिन अनुकूल है, जो मर्द अपने अभिमान को नहीं छोड़ता वह राणा (प्रतापसिंह) बहुत से राजाओं से घिरा हुआ पहाड़ों में रहा करता है[1]।

प्रातःस्मरणीय हिन्दूपति वीरशिरोमणि महाराणा प्रतापसिंह का नाम राजपूताने के इतिहास में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और गौरवास्पद है। राजपूताने

महाराणा का व्यक्तित्व

के इतिहास को इतना उज्ज्वल और गौरवमय बनाने का अधिक श्रेय उसी को है। वह स्वदेशाभिमानी, स्वतन्त्रता का पुजारी, रण-कुशल, स्वार्थत्यागी, नीतिज्ञ, दृढ़ प्रतिज्ञ, सच्चा वीर और उदार क्षत्रिय तथा कवि था[2]। उसका आदर्श था, कि बापा रावल का वंशज किसी के आगे सिर नहीं झुकायेगा। स्वदेशप्रेम, स्वतन्त्रता और स्वदेशाभिमान उसके मूलमन्त्र थे। उसको अपने वीर पूर्वजों के गौरव का गर्व था[3]। वह कहा करता था कि यदि महाराणा सांगा और मेरे बीच कोई और न होता तो चित्तोड़ कभी मुसलमानों के हाथ न जाता। वह ऐसे समय मेवाड़ की गद्दी पर बैठा जब कि

---

(१) ऊपर दिये हुए सोरठे आदि मलसीसर ठाकुर भूरसिंह शेखावत-प्रकाशित 'महाराणा यशप्रकाश' से उद्धृत किये गये हैं।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; राजरसनामृत; पृ० १३-१४।

(३) अबुल्फ़ज़ल ने लिखा है, कि उसको अपने पूर्व पुरुषों की वीरता का गर्व था (अकबरनामा; अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० ३, पृ० २४४)।

उसकी राजधानी चित्तोड़ और प्रायः सारी समान भूमि पर मुसलमानों का अधिकार हो गया था। मेवाड़ के बड़े बड़े सरदार भी पहले की लड़ाइयों में मारे जा चुके थे। ऐसी स्थिति में उसके विरुद्ध बादशाह अकबर ने उसको विध्वंस करने के लिये अपने सम्पूर्ण साम्राज्य का बुद्धिबल, बाहुबल और धनबल लगा दिया था। बहुत से राजपूत राजा भी अकबर के ही सहायक बने हुए थे। यदि महाराणा चाहता तो वह भी उनकी तरह अकबर की अधीनता स्वीकार कर लेता तथा अपने वंश की पुत्री उसे देकर साम्राज्य में एक प्रतिष्ठित पद पर आराम से रह सकता था, परन्तु वह स्वतन्त्रता का पुजारी केवल थोड़े से स्वदेशभक्त और कर्त्तव्यपरायण राजपूतों और भीलों की सहायता से अपने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये कटिबद्ध हो गया। उसकी वीरता, रणकुशलता, कष्ट-सहिष्णुता और नीतिमत्ता अत्यन्त प्रशंसनीय और अनुकरणीय थी। इन्हीं गुणों के कारण वह अकबर को, जो उस समय संसार का सब से अधिक शक्तिशाली तथा ऐश्वर्यसम्पन्न सम्राट् था, अपने छोटे से राज्य के बल पर वर्षों तक हैरान करता रहा और फिर भी अधीन न हुआ। अकबर ने उसे अधीन करने के लिये बहुत से प्रयत्न किये, अपने योग्य सेनापतियों को कई वार उसपर भेजा, एक वार स्वयं भी चढ़ आया, परन्तु राणा के आगे एक भी चढ़ाई में उसका मनोरथ पूर्ण न हुआ। राणा ने बादशाह के आगे सिर न झुकाया और न उसे बादशाह ही कहा। उसने मेवाड़ के उपजाऊ प्रदेश को उजाड़ दिया, खेती नष्ट करवा दी, और शाही फ़ौज की रसद तथा व्यापार का मार्ग रोककर नीतिज्ञता का परिचय दिया। वह केवल वीर और रणकुशल ही नहीं, किन्तु धर्म को समझनेवाला सच्चा क्षत्रिय था। केवल शिकार के लिये कुछ सिपाहियों के साथ आते हुए मानसिंह पर धोखे व छल से हमला न कर और अमरसिंह द्वारा पकड़ी गई बेगमों को सम्मान पूर्वक लौटाकर उसने अपनी विशाल-हृदयता का परिचय दिया। प्रलोभन देकर राजपूत राजाओं और सरदारों को सेवक बनानेवाली अकबर की कूट नीति का यदि कोई उत्तर देनेवाला था तो महाराणा प्रताप ही।

उक्त महाराणा के विषय में कर्नल टॉड का कथन है—'अकबर की उच्च महत्त्वाकांक्षा, शासननिपुणता और असीम साधन ये सब बातें दृढ़चित्त महाराणा प्रताप की अदम्य वीरता, कीर्त्ति को उज्ज्वल रखनेवाले दृढ़ साहस और

किसी अन्य जाति में न पाया जावे ऐसे निष्कपट अध्यवसाय को दबाने में पर्याप्त न थीं। आल्प पर्वत के समान अर्वली में कोई भी ऐसी घाटी नहीं, जो प्रताप के किसी न किसी वीर कार्य, उज्ज्वल विजय या उससे अधिक कीर्त्तियुक्त पराजय से पवित्र न हुई हो। हल्दीघाटी मेवाड़ की थर्मोपिली[1] और दिवेर मेवाड़ का मेरेथान[2] है[3]"।

वीर-श्रेष्ठ महाराणा के कार्य आज भी मेवाड़ की एक एक उपत्यका में वर्तमान समय के से जान पड़ते हैं। आज भी उसके वीरकार्यों की कथाएं और गीत प्रत्येक वीर राजपूत के हृदय में उत्तेजना पैदा करते हैं। महाराणा का नाम न केवल राजपूताने में किन्तु सम्पूर्ण भारतवर्ष में अत्यन्त आदर और श्रद्धा से लिया जाता है। अंग्रेज़ी तथा भारतवर्ष की प्रायः सभी भाषाओं में प्रताप के वीरत्व और यशोगान के अनेक ग्रन्थ बन चुके हैं और बनते जा रहे हैं। भारत के भिन्न भिन्न विभागों में महाराणा की जयन्ती भी मनाई जाने लगी है। जबतक संसार में वीरों की पूजा रहेगी, तबतक महाराणा का उज्ज्वल और अमर नाम लोगों को स्वतन्त्रता और देशाभिमान का पाठ पढ़ाता रहेगा। खेद है कि ऐसे वीर महाराणा का मेवाड़ में अबतक कोई स्मारक नहीं बना।

---

(१) उत्तरी और पश्चिमी यूनान के बीच की एक प्रसिद्ध तंग घाटी और रणभूमि का नाम है। जब कि ई० सन् पूर्व ४८० में ईरान के बादशाह ज़र्कसीज़ ने बड़े सैन्य दल के साथ यूनान देश पर आक्रमण किया, उस समय उस देश में भी हिन्दुस्तान की तरह अनेक छोटे छोटे स्वतन्त्र राज्य थे, जिन्होंने मिलकर अपने में से स्पार्टा के वीर राजा लियोनिडास को थर्मोपिली की घाटी में ८००० सैन्य सहित ईरानियों का सामना करने को भेजा। ईरानियों ने कई बार उस घाटी को विजय करने का यत्न किया, परन्तु उन्हें प्रत्येक वार बड़े संहार के साथ हारकर लौटना पड़ा। अन्त में एक विश्वासघाती पुरुष की सहायता से ईरानी लोग पीछे से पहाड़ पर चढ़ आये। लियोनिडास ने अपनी सेना में से बहुत से लोगों के ईरानियों के पक्ष में मिल जाने का सन्देह होने पर केवल १००० अपने विश्वासपात्र योद्धाओं को पास रख, बाक़ी सेना को निकाल दिया और आप बड़ी वीरता के साथ लड़कर मारा गया। ऐसा कहते हैं कि उसकी सेना में से केवल एक आदमी बचा था।

(२) यह प्रसिद्ध रणक्षेत्र ग्रीस देश की राजधानी एथेन्स से २२ मील पूर्वोत्तर ऐटिका प्रान्त में है। यहां ई० सन् पूर्व ४९० में यूनानियों की ईरानियों के साथ गहरी लड़ाई हुई थी, जिसमें यूनानियों ने सेनापति मिल्टियाडेस (Miltiades) की अध्यक्षता में अद्भुत वीरता दिखलाई और ईरानियों को अपने देश से मार भगाया था।

(३) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४०६-७।

महाराणा का क़द लम्बा, आंखें बड़ी, चेहरा भरा हुआ और प्रभावशाली, मूछें बड़ी, छाती चौड़ी, बाहु विशाल और रंग गेहुँआ था। वह पुराणे रिवाज के अनुसार दाढ़ी नहीं रखता था।